सत्सङ्ग-माला

प्रकाशक
ल जालान
प्रेस, गोरखपुर

सं० २००९ से २०१७ तक ५५,०००
सं० २०२० षष्ठ संस्करण १०,०००
सं० २०२२ सप्तम संस्करण १५,०००
कुल ८०,०००

मूल्य तीस पैसे

पता—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर

प्रथम संस्करणका निवेदन

इसके मूल लेखक हैं—श्रीमगनलाल हरिभाई व्यास। ये गुजरातके वसो नामक ग्रामके निवासी थे। गत संवत् २००५ आषाढ़ कृष्ण सप्तमी सोमवारको सन्ध्याके समय पद्मासन लगाकर प्रणवका जप करते-करते ब्रह्मरन्ध्रके द्वारा उन्होंने ऊर्ध्वगति प्राप्त की थी। ये बड़े ही भक्त, सूक्ष्म विचारक और साधन-सम्पन्न सत्पुरुष थे। इनके ये विचार बहुत ही अच्छे लगे थे, इससे इनका हिंदीमें अनुवाद करके 'कल्याण' में क्रमशः प्रकाशित कर दिया गया था। 'कल्याण' के पाठकों-ने इनको बहुत पसंद किया और पुस्तकरूपमें प्रकाशित करनेके लिये बार-बार अनुरोध किया। तदनुसार इन्हें पुस्तक-रूपमें प्रकाशित किया जा रहा है। ये विचार बहुत ही सुन्दर, उपादेय और लाभकारक हैं। आशा है, पाठकगण इस पुस्तकसे लाभ उठायेंगे।

श्रा० कृ० ५, सं० २००९
गोरखपुर

हनुमानप्रसाद पोद्दार

॥ श्रीहरिः ॥

सत्सङ्ग-माला

१–सत्य और प्रिय वाणी बोलनी चाहिये, असत्य और प्रिय नहीं। इसी प्रकार सत्य और अप्रिय भी नहीं बोलना चाहिये। जीव अनेक जन्मोंके संस्कारके कारण अप्रिय और असत्य बोलता है। वे संस्कार प्रयत्नसे हट सकते हैं। अतः सत्य और प्रिय बोलनेका अभ्यास करना चाहिये। चिन्ता रखकर अभ्यास करना और सत्य एवं प्रिय बोलनेमें कोई हानि हो जाय तो उसे सह लेना चाहिये। सत्य और प्रिय बोलनेकी स्थिति न हो तो मौन रहना चाहिये और उस मौन रहनेमें यदि हानि हो तो उसे सह लेना चाहिये; परंतु सत्य और प्रिय बोलनेके नियमका त्याग कभी नहीं करना चाहिये। जो इस (सत्य और प्रिय बोलनेके) नियमका दृढ़तासे पालन करेगा, उसे सुख, शान्ति, सम्पत्ति प्राप्त होगी, यश मिलेगा और निष्काम-भावसे पालन करनेपर मुक्ति मिलेगी। जबतक जीवन रहे, तबतक इस नियमका पालन करना चाहिये। इस नियममें बहुत ही बल है। असत्य बोलनेवाले प्रिय बोलते हैं, इसलिये व्यवहारमें प्रिय बोलनेवाले प्रायः कपटी होते हैं, वे स्वार्थसाधनके लिये कपटसे प्रिय वाणी बोलते हैं, अतः व्यवहारमें प्रिय बोलनेवालोंका विश्वास नहीं करना चाहिये।

सत्य बोलनेवाले कटु वाणी बोलते हैं और वह कटु वाणी सत्यके तपको खा जाती है। अतएव साधकको सत्य और प्रिय बोलनेका सतत प्रयत्न करना चाहिये, इससे भगवान् प्रसन्न होते हैं।

२–दूसरेकी चीज लेनेकी इच्छा कभी नहीं करनी चाहिये। इस नियमके पालनसे चोरी नहीं होगी, घूस नहीं ली जा सकेगी, किसीका न्याय्य स्वत्व नहीं छीना जायगा, मुफ्त कुछ भी नहीं लिया जायगा, दुराचार नहीं होगा, परस्त्रीके प्रति विकारसे नहीं देखा जायगा और अपना हक ही लिया जायगा। जिस वस्तुका मूल्य न दिया गया हो उसे लेनेकी इच्छा भी नहीं करनी चाहिये। इस नियमका पालन करनेवाला सबका प्रिय होता है, उसमें सब विश्वास रखते हैं, उससे सबको शान्ति मिलती है और सभी उसका प्रिय चाहते हैं।

३–किसीका कभी अपमान न करना। प्राणिमात्रको मान प्रिय है, अपमानसे उसको चोट लगती है, उसकी आत्मा दुखी होती है। अपमान करनेवालेका पुण्य नष्ट होता है। अपमान करनेवालेपर भगवान् प्रसन्न नहीं होते, वरं नाराज होते हैं। अपमान करनेवालेमें अभिमान होता है, अभिमान अपने स्वामीका अल्पकालमें ही नाश कर डालता है। प्रभुताके बलपर दीन, रंक या कष्टमें पड़े हुए मनुष्यका जो अपमान करता है, वह पुण्यके बलसे ही करता है। पुण्य समाप्त होते ही वह महान् दुःखमें आ पड़ता है। किसीका कभी अपमान न करना, यह महान् व्रत है। बालक, वृद्ध, आश्रित, दीन, दुखी, रोगी किसीका कभी अपमान न करे। अपनेमें जो भगवान्

विराज रहे हैं, वही सबके हृदयमें विराज रहे हैं, अतएव किसीका भी अपमान न करके सबका मान करना चाहिये। सम्पूर्ण दानोंमें मान सबसे बड़ा दान है। यह जिसको दिया जाता है, उसकी आत्मा प्रसन्न होती है। अतएव स्वयं अमानी रहकर सबको यथायोग्य मान देना चाहिये।

४—काठमें अग्नि व्याप्त है। अग्नि काठमें न हो तो वह प्रकट ही नहीं हो, परंतु प्रकट होती है। इससे यह सिद्ध है कि काठमें अग्नि है। इतनेपर भी काठको चीरनेसे जब उसमें अग्नि नहीं दिखायी देती, तब यह नहीं कहा जा सकता कि उसमें अग्नि नहीं है। इसी प्रकार परमात्मा सर्वत्र व्यापक हैं, वह निरी आँखोंसे नहीं दीखते। विचारसे समझमें आते हैं और श्रद्धा तथा भक्तिसे प्रकट होते हैं। जिसमें विश्वास हो उसी मूर्तिमें या अपने हृदयमें श्रद्धापूर्वक भगवान्‌को देखकर उनकी भक्ति करनेसे भगवान् अवश्य प्रकट होते हैं। अतएव दृढ़ निश्चय करके भगवान्‌की खूब भक्ति करनी चाहिये और शरीर छूटनेसे पहले ही भगवान्‌को प्राप्त करनेका प्रयत्न करना चाहिये। यही जीवका कर्तव्य है।

५—धर्मके चार अङ्ग हैं—सत्य, तप, दया और दान। तप इन्द्रियोंके निग्रहका नाम है। इन चारोंमेंसे एकको भी सिद्ध कर लेनेवाला परम सुखी हो जाता है, फिर जिसमें ये चारों बसते हैं उसकी महत्ताकी तो बात ही क्या। जिसमें ये चार नहीं हैं, वह धर्म नहीं है। ये चार जहाँ हैं वहाँ लक्ष्मीजी निवास करती हैं। कीर्ति तो इन चारोंके पीछे लगी रहती है। इन चारोंका सेवन करने-वालेमें सदा तेज रहता है। जो दुखी है उसे निश्चय जानना चाहिये

कि इन चारोंमेंसे उसमें किसीकी न्यूनता है। सुखकी इच्छावालोंको इन चारोंका सदा सेवन करना चाहिये।

६—सत्य और प्रिय वाणी, ब्रह्मचर्य, मौन और रसत्याग—इन चारका सेवन करनेवालेमें सदा सिद्धियाँ बसती हैं।

७—जिसका मन कभी विकल नहीं होता और सदा प्रसन्न रहता है, वह सदा मुक्त ही है।

८—मैं चेतनस्वरूप आत्मा हूँ, नित्य हूँ, परमात्मस्वरूप हूँ। यह सारा जगत् अचेतन और असत् होनेके कारण मेरा कुछ भी नहीं कर सकता। ऐसा दृढ़ ज्ञान हुए विना सदा रहनेवाली शान्ति नहीं मिलती, मन प्रसन्न नहीं होता।

९—हर्ष और आनन्दमें भेद है। इन्द्रियोंके अनुकूल भोगकी प्राप्तिमें हर्ष होता है और हर्षके मोहका परिणाम शोक होता है। इसीलिये भोगसे मन और इन्द्रियाँ कभी प्रसन्न होते ही नहीं। मन जब आत्मामें लीन होता है, तभी मन, इन्द्रियाँ आनन्दका अनुभव करती हैं। आनन्द आत्मामें है। आत्मा आनन्दस्वरूप है। जगत्के किसी भी भोगमें आनन्द नहीं है।

१०—एकान्तमें बैठो। अकेले घूमो। अकेले सोओ। अकेले रहो और यह भी प्रकृतिके समीप—नदी, पर्वत या जंगलके पास। अकेले भगवन्नामका खूब जप करो। अकेले विचार करो, अकेले शास्त्रका चिन्तन करो। सात्त्विक आहार करो। बहुत न खाओ। थोड़ा भूखे रहा करो।

११—जैसा अन्न वैसी बुद्धि। जैसा सङ्ग वैसी बुद्धि। अतएव सज्जनका सङ्ग करो। आत्माका कल्याण करनेवाली पुस्तक पढ़ो और मेहनत करके अपने हकका अन्न खाओ। पराया अन्न जहाँतक बने, नहीं खाना चाहिये। यदि कभी खाना ही पड़े तो भाग्यवान्, गुणवान्, भगवान्के भक्त और उद्यमीका अन्न खाओ।

१२—सम्पत्ति, संतति और कल्याणकी इच्छावाले गृहस्थाश्रमीको गायत्रीका जप करना चाहिये। शङ्करकी पूजा करनी और प्रतिदिन अग्निमें आहुति देनी चाहिये। संध्या-समय और प्रातःकाल गूगल आदिका धूप करना, साँझ-सबेरे घीका दीपक जलाना, भोजनसे पहले कौएको बलि देना, पक्षियोंको दाने डालना, उनके जल पीनेका साधन करना और गाय तथा कुत्तेको खानेको देना चाहिये। हो सके तो भूखेको अन्न देना, साधुको भोजन कराना चाहिये। किसी भिक्षुकका कभी तिरस्कार नहीं करना चाहिये। न हो सके तो चाहे न दे; परंतु अपमान कभी न करे। सदाचारका पालन करना चाहिये।

१३—शोक, चिन्ता, भय, उद्वेग, मोह और क्रोध—इन छःसे जो मुक्त है, वह सदा मुक्त है।

१४—जिसके घरमें स्त्री-बालक, वृद्ध, रोगी, अतिथि और आश्रित आनन्दमें रहते हैं, उस घरमें सदा लक्ष्मी निवास करती है। और जिस घरमें ये छः दुखी रहते हैं, उसके घरसे लक्ष्मी थोड़े ही समयमें अदृश्य हो जाती है।

१५—पैदाइश, पड़ोस, पवन, पानी, प्रकाश, पगताश, पवित्रता और परमार्थ—ये आठ जहाँ सुलभ हों, वहाँ रहना चाहिये।

१६–हो सके तो किसीका अन्नसे, वस्त्रसे, धनसे, वचनसे, विचार-से और बुद्धिसे भला कर देना। पर बुरा तो कभी करना ही नहीं। किसीका भी अहित उसके अपने कुकर्मसे ही होता है तथापि मनुष्य उसके अहित करनेमें व्यर्थ ही भाग लेकर पाप करता है।

१७–हो सके तो पुण्य करना, पर पाप तो कभी करना ही नहीं।

१८–हो सके तो दूसरेको देना, पर लेना तो नहीं ही।

१९–दूसरेको सुखी देखकर प्रसन्न होना, दुखी देखकर सहायता करना, पर दुखी देखकर प्रसन्न तो होना ही नहीं।

२०–एक गुप्त बात कहता हूँ। तुम जैसा करोगे, वैसा ही तुम्हारे प्रति सारा जगत् करेगा। तुम सच बोलोगे तो सारा जगत् तुम्हारे साथ सच बोलेगा। तुम यथाशक्ति दूसरेको सुखी करना चाहोगे तो सारा जगत् तुम्हें सुखी करना चाहेगा। तुम दया रक्खोगे तो सारा जगत् तुम्हारे प्रति दया रक्खेगा। इसमें दो शर्तें हैं—एक तो यह कि तुम जिस गुणका आचरण करो, वह निष्काम भगवदर्पण होना चाहिये। दूसरी, बहुत बार आचरण करनेसे वह गुणरूप स्वभाव हो गया होना चाहिये। कोई भी पुण्यकार्य सकाम होनेपर सम्पत्ति और यश देता है तथा निष्काम होनेपर भगवान्‌की प्राप्ति कराता है।

२१–त्याग तप है। त्यागके बिना न तेज है, न सत्कार है, न शान्ति है, न प्रसन्नता है, न आनन्द है और न मुक्ति ही है। त्याग करो—घरका नहीं, स्त्री-पुत्रोंका या धनका नहीं। त्याग करो क्रोधका—कड़वी वाणीका, विषय-भोगका, मनकी विविध कामनाओंका,

दूसरेको दुःख देनेवाले स्वभावका, आलस्यका, अभिमानका, आसक्तिका, ममताका और अहंताका ।

२२—कोईके बन जाओ, स्वामी बना लो । स्वामी समर्थको बनाओ । सबसे समर्थ हैं—भगवान् । भगवान्के बन जाओ । भगवान्से लग्न (विवाह) कर लो । हाथ पकड़ लो । वे पकड़ा हुआ हाथ नहीं छोड़ते । दयालु हैं और समर्थ हैं । देखो, अगर तुम छोड़ भी दोगे, तो याद रखो, भगवान्के बन जानेपर भगवान् कभी भूलते नहीं, छोड़ते नहीं । जगत्में जीवन रहते या मर जानेके बाद कोई उसे सताने और दुःख देनेमें समर्थ नहीं होता । सर्वभावसे भगवान्की शरण ले लो । मैं भगवान्का हूँ, यों कहो, यों मान लो । फिर चिन्ता, भय और शोकसे छूटकर विचरो । जिसको जितना ही चिन्ता, भय और शोक होता है, उतना ही वह भगवान्का नहीं होता, यह समझना चाहिये । जिसके सिरपर समर्थ चौदह लोकके नाथ स्वामी हों, जो अनन्यभावसे उनका बन चुका हो उसे क्या चिन्ता, भय और शोक होता है ?

२३—तुममें व्यसन है, व्यसनमात्रका त्याग किये बिना नहीं तरा जाता । तुममें विषयभोगकी इच्छा है । विषयभोगमें रस रहेगा, तबतक भगवान् नहीं मिलेंगे । तुममें बहुत तरहकी कामनाएँ हैं । धीरे-धीरे कामनाओंका, व्यसनका एक-एक चुन-चुनकर त्याग किये बिना भगवान् नहीं मिलेंगे । जहाँ कामना है, वहाँ भगवान् नहीं और जहाँ भगवान् हैं वहाँ कामना नहीं ।

२४—तुम दुखी हो; तुममें दया कम होगी । दयाहीनके पास दुःख

जहाँ-तहाँसे खोजता हुआ चला आता है। जिसमें दया है, जिसका हृदय दयासे कोमल है, उसके पास सुख चारों दिशाओंसे आते हैं।

२५—तुम दुखी हो ? तुम जरूर दूसरेकी निन्दा करते होओगे। दूसरेका दुःख देख-सुनकर प्रसन्न होते होओगे। सुखी होना हो तो दूसरेकी निन्दाका त्याग करो। जो उपस्थित नहीं है, उसके अवगुणोंका, दोषोंका कथन निन्दा कहलाता है, उसका त्याग कर देनेपर तुम सुखी हो जाओगे। जो दूसरेका दुःख देखकर प्रसन्न होता है, उसके पास दुःख अवश्य आता है, दूसरेको दुखी देखकर सहायता करो, दया करो। यदि कुछ भी न बने तो उसका दुःख दूर करनेके लिये भगवान्‌से प्रार्थना करो।

२६—जब-जब मनमें अशान्ति हो, तब-तब समझना चाहिये कि हम भगवान्‌को भूल गये हैं और इसलिये उसी समय भगवान्‌का स्मरण करना चाहिये।

२७—तुम जानमें, अनजानमें यदि माता-पिताको दुःख दोगे तो उनकी इच्छा न होनेपर भी उनके हृदयसे तुम्हारे लिये जो शाप निकलेगा उससे या तो तुम लक्ष्मीहीन हो जाओगे या संततिहीन। 'माता-पितासे मैं अधिक जानता हूँ, अधिक समझता हूँ।' ऐसा मानकर उनका कभी अपमान न करना। उनके हृदयका एक आँसू तुम्हारी सारी सम्पत्तिको जलाकर भस्म कर देनेमें समर्थ है। जिस विद्यासे धन पैदा होता हो, वह चाहे तुमने अधिक पढ़ी हो, जिस बुद्धिसे सच्चेको झूठा, झूठेको सच्चा साबित किया जाता हो, वह बुद्धि चाहे तुममें विशेष हो, परंतु माता-पितापर श्रेष्ठता प्राप्त करनेके लिये ऐसी

बुद्धि और विद्या व्यर्थ है । विद्या वह है, जिससे भगवान्के दर्शन हों; बुद्धि वह है, जिससे भगवान्को पहचाना जाय, धर्माचरण बने । धर्म, सत्य और तप—यही जीवकी सम्पत्ति हैं । यहाँकी लक्ष्मी तो जीवके लिये भाररूप, चिन्ता, भय, क्लेश, श्रम, दुःख और मदको देनेवाली है और अन्तमें जन्म-मरणके चक्करमें डालनेवाली है ।

२८—जैसे मूर्ति (पत्थरकी) पत्थर नहीं है, पर पत्थरमें भगवान् हैं, इसी प्रकार हाड़-मांसके शरीरमें माता-पिता हाड़-मांस नहीं हैं, पर हाड़-मांसके शरीरमें विराजित परमात्मा हैं । माता, पिता, गुरु, बड़े-बूढ़े, बालक और आश्रितका सत्कार करना चाहिये । माता-पिता और गुरुकी देवताकी भाँति आराधना करनी चाहिये । उन्हें मान देना, उनके कथनानुसार करना, उन्हें संतोष पहुँचाना चाहिये । देवताओंका शाप टालनेमें माता, पिता और गुरु समर्थ हैं; परंतु माता, पिता, गुरुका शाप टालनेके लिये त्रिभुवनमें कोई भी समर्थ नहीं है ।

२९—स्त्रीको यथायोग्य आवश्यकताओंकी पूर्ति करके संतुष्ट रक्खो, पर उसके वशमें न हो जाओ । स्त्रीमें बुद्धि कम है, हृदय प्रधान है । उसमें अच्छे-बुरेका, लाभ-हानिका स्वयं विचार कम है । वह विचार कम कर सकती है, वह भावनाके वशमें है । मोह, दया, ममता, लोभ आदिके अधीन झट हो जाती है । उसे नया-नया देखना, नया-नया सुनना, नया-नया पहनना, घूमना-फिरना, नयी-नयी वस्तु प्राप्त करना विशेष पसंद है । उसको उसकी बुद्धिपर चलने दोगे या तुम उसकी बुद्धिपर चलोगे तो भयङ्कर दुःखमें पड़

जाओगे। अतएव उसपर सदा नियमन रक्खो। उसका हृदय ऐसा है जो सहज ही ठगा जा सकता है, इसलिये उसकी रक्षा करनी चाहिये। दुर्जन, प्रलोभन, वहम और मोहसे उसे बचना चाहिये। उपदेशकी अपेक्षा भय उसके लिये विशेष लाभदायक है। निष्ठा पक्की हो जानेपर वह उससे नहीं फिरती। इसीसे पातिव्रत उसके लिये उत्तम धर्म है। पतिके आज्ञानुसार चलनेका व्रत रखनेवाली स्त्री कभी दुखी नहीं होती। स्त्रीको ज्ञान पसंद नहीं है, भक्ति पसंद है। तीर्थाटन पसंद है। देव-दर्शन पसंद है। व्रत-नियम पसंद है इसलिये स्त्रीको व्रत-नियम करने देना चाहिये। बुरे सङ्गसे स्त्री बिगड़ती है, इसलिये उसका सङ्ग सदा अच्छा होना चाहिये। इसीलिये उसको सदा गृहकार्यमें, देव-दर्शनमें और भगवत्-सम्बन्धी तथा नीतिकी पुस्तकोंके पढ़नेमें लगाये रखना चाहिये। पतिको साथ लिये बिना स्त्रीको कभी पर-पुरुषके साथ,—भले ही वह साधु या भक्त ही हो—नहीं रहना चाहिये। पुरुषको चाहिये कि वह स्त्रीको पर-पुरुषके पास चाहे वह कोई क्यों न हो, कभी नहीं रक्खे। स्त्री चाहे जितनी होशियार हो परंतु भोली है और पुरुष चाहे जितना धर्मात्मा माना जाता हो, पर वह स्त्रीके लिये प्रायः दगाबाज, कामी और कपटी है। अतएव स्त्रीको पर-पुरुषका और पुरुषको पर-स्त्रीका सङ्ग कभी करना ही नहीं चाहिये। स्त्री-पुरुषके लिये एकान्तवास भयरूप है। अपनी स्त्रीको दूसरेके अधीन कभी नहीं रखना चाहिये।

३०—जिसमें सदाचार नहीं, वह सत्कारका पात्र नहीं! किसीके विशेष धन हो, विशेष बल हो, विशेष बुद्धि हो, सिद्धियाँ हों, वह आकाशमें उड़ता हो, भूमिमें गड़ता हो, मुर्देको जीवित

करता हो और चाहे इससे भी विशेष कोई चमत्कार दिखाता हो, पर जिसमें सदाचार न हो तो उसका संक्रामक रोगीकी भाँति त्याग कर देना चाहिये। कोई भजन गाता हो, व्याख्यान देता हो, नाचता-कूदता हो और गवाता हो, पर यदि वह सदाचारी नहीं है तो उसका त्याग कर देना चाहिये। दुराचारी संक्रामक रोगीकी अपेक्षा भी अधिक भयङ्कर है। दुराचारके समान कोई दूसरा संक्रामक रोग नहीं है।

३१–जो मनुष्य पर-स्त्रीके साथ बातें करनेमें रस लेता हो, निर्लज्ज हो, मीठी-मीठी बातें करनेवाला हो और रास्तेमें या चलते-चलते खाता हो, उसका सङ्ग कभी नहीं करना चाहिये। ऐसे लोग प्रायः हृदयके कपटी और दुष्ट भाववाले होते हैं। मीठी-मीठी बातें करनेवाला चोर होता है—झूठा, कपटी और दुराचारी होता है। व्यवहारमें मीठा बोलनेवालेका कभी विश्वास न करे। खुशामद करनेवालेका विश्वास न करे। सच्चा मीठा बोलनेवाला और हितैषी दुर्लभ है।

३२–इस कालमें कामके बिना दूसरेके घर कभी नहीं जाना चाहिये और न दूसरेको अपने घर आने देना चाहिये। कोई आ जाय तो उसे नम्रतासे पूछना चाहिये, 'कैसे आये? क्या काम है? किससे काम है?' और यदि काम न हो तो उसे आदरके साथ घरसे विदा कर देना चाहिये। परिचित, प्रेमी और सगे-सम्बन्धी हों तो दूसरी बात है। पर उनको भी बिना काम इस समय कहीं नहीं रहना चाहिये। पिताको लड़केके घर भी काम बिना अधिक नहीं रहना

चाहिये। अपने घरमें, अपने मुकाममें और अपने काम-धंधेके लिये सदा रहना चाहिये। सदा या तो उद्यम करना चाहिये या भजन-सत्सङ्ग करना चाहिये। निकम्मा कभी नहीं बैठे रहना चाहिये।

३३—किये बिना मिलनेका नहीं। जैसा करता है, वैसा मिलता है। पहले किया है वैसा अब मिल रहा है और अब जैसा करेगा वैसा आगे मिलेगा। करना अपने हाथ है, फल कब कैसा और कितना देना, यह ईश्वरके हाथ है। पुण्यका फल सुख और पापका दुःख है, यह निश्चित है। बस, तो करना आरम्भ कर दो। किये जाओ। लगे रहो। यह समय आया है, चला जायगा। जागो, उठो और लग जाओ। फिर ऐसा अवसर सहज नहीं आयेगा। ईश्वरका भजन करो। तुम्हारे पास कुछ हो तो दान करो। बुद्धि हो तो भूले हुएको मार्ग बताओ, दुखीकी सहायता करो, दुखीके प्रति दया रखो। मन और इन्द्रियोंको विषयोंसे हटाकर भगवान्‌में लगाओ। कुटुम्ब-पालन तो पशु-पक्षीकी योनिवाले भी करते हैं, विषय-भोग तो तुम्हारी अपेक्षा पशु-पक्षियोंको अधिक सुलभ है। फिर कुटुम्ब-पालन और विषय-भोगमें ही अपनी आयुको क्यों बिता रहे हो? देखो, तो सही। जगे हो या अभी सो ही रहे हो? देखो, तुम्हारी सारी प्रवृत्तियाँ कुटुम्बके पालन-पोषण और मन-इन्द्रियोंके भोगोंके लिये ही हो रही हैं। काल आयेगा और सब कुछ यहीं छोड़कर जाना पड़ेगा। उस समय कोई कुटुम्बी सहायता नहीं कर सकेगा। जीवनभर परिश्रम करके जिसको प्राप्त किया, वह सम्पत्ति, वह धन और वह कुटुम्ब भी यहीं रह जायगा। जिसके लिये पाप किया, वह सब कुछ यहीं छूट जायगा। तुम अकेले जाओगे। स्त्री-पुत्र, स्नेही-सम्बन्धी कोई तुम्हारे साथ नहीं

जायँगे । पाप और पुण्य ही तुम्हारे साथी होंगे । इसलिये भाई ! चेत करो ! प्रतिदिन कुछ पुण्य करते रहो । भजन करते रहो । ये तुम्हारे काम आयेंगे । जीवका धन धर्म और भजन—ये दो ही हैं । इस बातको कभी न भूलो और धन-धर्मके संग्रह और पालनमें लगे रहो ।

३४—पतिकी आज्ञाका पालन करना स्त्रीका परम धर्म है । वह इतना ही धर्म पालन कर ले तो स्वर्गमें जाती है ।

३५—माता-पिताकी आज्ञाका पालन करना, उनकी सेवा करना—यह संतानका धर्म है । इतने ही धर्मके पालनसे संतान अवश्य स्वर्गको जाती है ।

३६—ऐसी ही क्रिया करनी चाहिये और ऐसी ही वाणी बोलनी चाहिये कि जिससे असत्य, आलस्य, अकुलाहट, चिन्ता, भय और विशेष श्रम न हो ।

३७—बहुत बातोंको जानना और आचरण करना कठिन मालूम होता हो तो एक ही बात बतलाता हूँ—'सदा प्रसन्न रहना ।' मनकी प्रसन्नता स्थिर रहे ऐसा बोलना, ऐसा बर्ताव करना और ऐसा विचार करना चाहिये । जिसको चिन्ता नहीं है, भय नहीं है, जो क्रोध नहीं करता, जो सदाचारी और शान्त है, वही नित्य प्रसन्न रह सकता है । किसी भी क्रियाके करनेसे पहले विचार करके देख लो कि इससे मन प्रसन्न रहेगा ? प्रसन्न मनवालेकी बुद्धि सदा स्थिर रहती है, मन शान्त रहता है, मुखकी आकृति शान्त क्षोभरहित होती है, मनको प्रसन्न रखनेका अभ्यास करनेसे वह सिद्ध होती है । मनमें उठनेवाले संकल्पोंके अनुसार ही जो क्रिया करता है,

उसका मन प्रसन्न नहीं रहता । मनमें चोरी या दुराचारका विचार आया तो उसके अनुसार कार्य प्रारम्भ करते ही मन अशान्त, व्यग्र, चिन्तित और भयसे युक्त हो जाता है । प्रसन्नता तो मनकी सदा शान्त अवस्था है; इन्द्रियनिग्रह, मौन और आत्मबुद्धिसे दीर्घकालमें यह प्राप्त होती है ।

३८–एक सहज नियम बताता हूँ । इतना हो जाय तो भी तरा जा सकता है—'दूसरेकी निन्दा न सुनना, न करना ।' जो उपस्थित न हो उसके दोषका कथन करना निन्दा कहलाता है ।

३९–बालक जन्म लेता है, उसी समय ज्योतिषी उसके जीवनमें क्या-क्या होनेवाला है सब बता देते हैं । अतएव उसके जीवनमें जो होनेवाला है, वह जन्मसे ही निश्चित है । अपने जीवनमें जो कुछ होना है, वह तो निश्चित है ही; जगत्‌में भी जो कुछ होना है, वह भी निश्चित है । सिनेमाके फिल्मकी भाँति इस जगत्‌में जो कुछ होना है सो होगा ही । अतएव हर्ष-शोक और आश्चर्यको छोड़कर शान्तिके साथ उसे देखा करो और अपनेको पहचानो ।

४०–तुमने इतिहास पढ़ा । भूगोल, खगोल पढ़ा । भाषाएँ पढ़ीं, शास्त्र पढ़े, बहुत जानकारी प्राप्त की और उस जानकारीसे तुम्हें अभिमान हो गया कि 'मैं बहुत जानता हूँ ।' पर मैं तुम्हें कानमें पूछता हूँ कि क्या तुमने यह जान लिया कि 'तुम कौन हो ?' इसके जाने बिना सारा जानना भाररूप है । तुमने बहुत देखा । शहर, खण्ड और सारी पृथ्वी देखी, पेड़, पहाड़ और जंगल देखे । भाँति-भाँतिके मनुष्य, पशु और पक्षी देखे । पर मैं तुम्हें धीरेसे पूछता हूँ कि तुमने

अपनेको देखा ? तुमने अपनेको नहीं जाना, नहीं देखा और सब कुछ जान लिया, देख लिया तो वह सब व्यर्थ है । तुम्हारा सारा परिश्रम व्यर्थ गया । अब भी चेतो, देखो, जानो और समझो कि तुम कौन हो ।

४१—तुम किसपर गर्व करते हो ? विद्यापर । तुम्हारी विद्या तो तुम्हारे और तुम्हारे कुटुम्बका पेट भरने, पाप करने और मन-इन्द्रियोंको प्रसन्न करने-जितनी ही है । यह सब काम तो पशु-पक्षी बिना पढ़े ही करते हैं और तुमसे अच्छा करते हैं । तो मूर्ख ! इसके लिये तुमने क्यों इतना परिश्रम किया ? पशु-पक्षी और देव-योनिमें जिसकी प्राप्ति नहीं होती, उसकी प्राप्तिके लिये तुम मनुष्य बने । उसको तो प्राप्त किया नहीं और उलटे परिश्रममें लग गये। मूर्ख ! अब भी चेतो ! अपनेको पहचानो । भगवान्‌की शरण लो और सदाके लिये संसारसे तर जाओ !

४२—परस्त्रीके साथ कभी एकान्तमें न रहो । प्रयोजनके बिना उससे व्यर्थ बातें न करो । परस्त्रीकी ओर देखनेमात्रसे विकार उत्पन्न होता है, बात करनेसे बढ़ता है, स्पर्श करनेसे पूर्णताको पहुँचता है । पृथिवीकी ओर नजर रखकर चलो । जो परस्त्रीसे बच गया, वह नरकसे बच गया, परस्त्री नरकका द्वार है ।

४३—परायी वस्तु लेनेकी इच्छा करनी ही नहीं । परायी वस्तु ही पाप है । दान नहीं लेना चाहिये। मेहनत करके खाना चाहिये । बिना मेहनतके जो जिसका खाता है, वह उसका गुलाम हो जाता

है और इस प्रकार उसके अधीन हो जाता है । स्वतन्त्र वह है, जो अपनी सच्ची मेहनतकी कमाई खाता है ।

४४–परस्त्रीका सङ्ग करते हुए, उसके साथ रहते हुए यदि तुम समझते हो कि निर्विकार रहोगे तो यह तुम्हारा मिथ्या बकवाद है । जिस प्रकार नशेबाजकी बात अथवा सन्निपातग्रस्त रोगीकी बात ग्राह्य नहीं होती, उसी प्रकार तुम्हारी यह बात ग्राह्य नहीं है । तुम विकारके कीड़े हो, पामर हो, तुम्हारी शक्ति ही क्या ? परस्त्रीके सहवाससे यदि कोई बचता है तो भयसे अथवा भगवान्‌की दयासे । अन्यथा मनकी ताकत कहाँ जो एकान्त और अनुकूलता तथा सामर्थ्यके होते हुए भी परस्त्रीसे बच सके । कल्याणकी कामना करनेवालोंको कभी एकान्तमें परस्त्रीका सेवन नहीं करना चाहिये; और प्रयोजन हो उतना ही संसर्ग रखना चाहिये । परायी स्त्रीको देखना, उसके साथ रसपूर्वक बातचीत करना, उसकी बात सुननेमें दिल लगाना, छिपकर बातें करना, कोई-न-कोई बहाना निकालकर स्पर्श करना—ये सारे विकारके द्वार हैं । परायी स्त्री और पराये धनसे जो बचता है, वह स्वर्ग जाता है ।

४५–जब तुमको अपने गुरुजन, बड़े और पूज्य लोगोंमें दोष दिखलायी दें, सगे-सम्बन्धी अप्रिय लगें और पराये लोग प्रिय लगें, परायेमें गुण दीखे और स्वजनोंमें अवगुण सूझे, तब जान लो कि तुम्हारी दशा उलटी आ गयी है और स्वल्पकालमें ही तुम दुःखमें पड़नेवाले हो ।

४६–कल्याणके मार्गपर चलनेवाले, जैसे भगवान्‌का नाम-जप करनेवाले, भजन-कीर्तन करनेवाले, दान-पुण्य करनेवाले—इन

सबको सम्पत्ति और यश थोड़े ही समयमें प्राप्त होता है। और उसमें तृप्त रहनेवालोंका पुण्य उसमें ही समाप्त हो जाता है। यदि विशेष पुण्य हो तो उसे अभिमान होता है, दूसरोंको उपदेश देनेका उसका मन करता है, वह दूसरोंको अपनी इच्छाके अनुसार चलाना चाहता है। बड़ा बननेका मन होता है और अपने बराबरीवालों तथा विशेष योग्यतावालोंसे द्वेष होता है। इस प्रकारसे मनकी भूल-भुलैया, मनकी लोलुपतामें पड़कर कल्याणके पुण्यको समाप्त कर देता है और भगवान्‌को पाता नहीं। मनकी कामनाओंके वशमें चलनेवाला भगवान्‌को कभी नहीं पा सकता। इन्द्रिय और मनके निग्रहके बिना लाखों उपाय करनेपर भी भगवान् नहीं मिलते। मुक्ति नहीं मिलती।

४७—अपनेसे हल्के आचार-विचारवालोंका भोजन कभी न खाओ, उनके सहवासमें कभी न रहो, उनके साथ बात-व्यवहार भी न करो। याद रखो कि जैसा मन होता है वैसा ही मनुष्य होता है। और जैसा संस्कार होता है वैसा मन बनता है। मन तो प्रकृतिसे बना हुआ है। मनुष्य जो भोजन करता है उस भोजन और पानीके सूक्ष्म भागसे मन बनता है। खाने-पीनेके पदार्थोंके परिणामसे मन बनता है। उसके बाद खाये-पीये पदार्थोंके साथ भावनाका सूक्ष्म संस्कार होता है। उसका भी मनके संस्कारपर असर पड़ता है। फिर जो कुछ तुम पढ़ते हो, देखते हो, सुनते हो, अनुभव करते हो, उन सबका संस्कार मनके खजानेमें इकट्ठा होता है। अतएव यदि तुम कल्याणकी इच्छा करते हो तो अपने समान या अपनेसे विशेष आचार, विचार और अभ्यासवाले व्यक्तिका ही भोजन ग्रहण करो। शुद्ध अन्न लो, शुद्ध जल लो, शुद्ध हवा लो और ऐसे ग्रन्थका वाचन

करो, जिससे मनपर मलिन संस्कार न पड़े। जिस वाचनसे मनमें कामनाएँ जाग्रत् हों, उसे मलिन जानना चाहिये। जिससे मनमें कामनाएँ घटें और परमात्मामें प्रीति उत्पन्न हो, मन निर्मल हो, उसे शुद्ध वाचन जानना चाहिये।

४८—जिस प्रकार प्रतिदिन दाँत साफ करना जरूरी है; क्योंकि यह मैला हो जाता है; जिस प्रकार स्नान आदिसे प्रतिदिन शरीर स्वच्छ रखना जरूरी है, क्योंकि वह मैला हो जाता है; जिस प्रकार वस्त्रोंको धोना जरूरी होता है, जैसे घरको रोज साफ रखना पड़ता है। उसी प्रकार मनको भी रोज स्वच्छ करना पड़ता है। जिस प्रकार बर्तन घिसनेसे साफ होता है, उसी प्रकार मनपर जो मैल चढ़ी होती है (और रोज उसपर मैल चढ़ती है ही) उसको साफ करनेके लिये उपासनाकी आवश्यकता पड़ती है। किसी सम्प्रदायमें यह उपासना प्रतिदिन तीन बार कही गयी है और किसीमें पाँच बार। और कुछ लोग तो अपना लक्ष्य दिनभर मनपर ही रखते हैं, और मैला होते ही उसे साफ कर डालते हैं। जिस प्रकार रास्तेके ऊपरके मकानमें धूल, इच्छा न होते हुए भी उड़कर घरमें आकर सब कुछ मैला कर देती है, उसी प्रकार मनुष्यकी इच्छा न होते हुए भी मन इन्द्रियोंसे अनुभवद्वारा मैला हो जाता है। समझदार आदमी अपने मनके उस मैलको तुरंत ही धो डाले। जिससे तुरंत न हो सके उसे दिनमें उस कामको करनेका समय निश्चित कर लेना चाहिये। इस कामको शास्त्रोंने सन्ध्योपासना, स्तुति, प्रार्थना, पूजा आदि नाम दिये हैं।

४९–जिनको अपनी या परायी स्त्रीको देखनेमें रुचि है, जिनको स्त्रियोंकी बातें सुननेमें अच्छी लगती हैं और जो स्त्रीके सहवाससे प्रसन्न होते हैं, वे उसी परिमाणमें भगवान्‌से विमुख हैं। जैसे-जैसे भगवान्‌में प्रीति होती जायगी, वैसे-वैसे ही स्त्रीका सहवास, उसके रूपका दर्शन और उसकी वाणी सब कुछ कड़वी—विष-जैसे लगने लगेगी, और व्यवहार—धन कमाना और खर्च करना अत्यन्त दुःख-रूप जान पड़ेगा। फिर तो स्त्री हो या पुरुष—किसी भी व्यावहारिक मनुष्यका सहवास, बातचीत, प्रसङ्ग अत्यन्त ही त्रासदायक लगेगा; क्योंकि ये सभी भगवान्‌के अनन्य भक्तके लिये विघ्नरूप हैं।

५०–स्त्रीकी बात यदि अपनेको ठीक न लगती हो तो उसके अनुसार काम करना मोह है और वह दुःख प्रदान करता है। स्त्री या बालक प्रत्येकके कहे अनुसार अपनी इच्छाके विरुद्ध बर्तनेसे हम उनके गुलाम हो जाते हैं। स्त्री, बालक, अतिवृद्ध और रोगीको अपने हिताहितका ज्ञान कम रहता है। अतएव श्रेयकी इच्छा करनेवालोंको चाहिये कि उनका जो आग्रह ठीक न जँचे, उसे न करे।

५१–शरीरसे कर्म करनेवाला चित्त है। वह चित्त यदि शान्त रहता है तो सुखका अनुभव करता है और अशान्त मन दुःखका अनुभव करता है। चित्त दो प्रकारसे अशान्त होता है। एक दूसरोंसे और दूसरा अपनेसे। दूसरोंसे हुई अशान्तिको दूर करनेके लिये एकान्त सेवन करना चाहिये। दूसरोंके संसर्गमें नहीं आना चाहिये। नदी, पर्वत, समुद्र, देवस्थान, तीर्थ, एकान्त, प्राकृतिक दृश्यवाले स्थान आदिका सेवन करे। अपनेद्वारा जो अशान्ति होती है, वह इच्छा

करनेसे उत्पन्न होती है। उन इच्छाओं और कामनाओंको दुःखरूप जानकर उनका धीरे-धीरे त्याग करे। सुख जगत्के किसी प्राणी या पदार्थमें नहीं है। सुख मनकी शान्तिमें, मनकी प्रसन्नतामें है। वह मनकी शान्ति और प्रसन्नता, जिस परिमाणमें मन जगत्से मुँह मोड़कर भगवान्की ओर झुकेगा, उसी परिमाणमें बढ़ेगी। मन और इन्द्रियोंके भोगोंका त्याग करनेके सिवा लाखों उपाय—करोड़ों खर्च करनेसे सुख-शान्ति और आनन्द मिलनेका नहीं।

५२—बेकार कभी न बैठो। या तो कोई उद्यम करो, जगत्के लिये उपयोगी काम करो, जगत्की सेवा करो अथवा ईश्वरकी भक्ति करो; परन्तु कभी बेकार न बैठो। आत्मचिन्तन करना भी कर्म है। मिथ्या वचन मत बोलो। दूसरोंकी निन्दा न करो। दूसरोंकी बुराई न करो। दूसरोंकी बुराईकी इच्छा भी न करो। दूसरोंकी बुराई देखकर प्रसन्न मत होओ। अपने विनश्वर शरीरसे जबतक जिओ तब-तक कर्म करके प्राणीमात्रकी किसी-न-किसी प्रकार सेवा करो।

५३—दान दो—तुम्हारे पास जो हो वह दान करो। शक्ति, साधन और सम्पत्तिको परोपकारमें लगानेका नाम दान है। इसीका नाम सेवा है। पढ़े-लिखे हो तो दूसरोंको पढ़ाओ। धन हो तो उससे समाजकी आवश्यकताओंकी पूर्ति करते हुए सेवा करो। बुद्धि विशेष हो तो भूले-भटकोंको मार्ग बताओ। तालाब, कुँआ खुदवाओ। दवाखाना खोलो, भूखोंको अन्न दो, प्यासेको पानी दो। अपढ़को पढ़ाओ। देवमन्दिर बनवाओ। पथिकको आश्रय दो। गायोंका पालन करो। निराधारको अन्न-वस्त्र देकर आधार बनो।

निरुद्यमीको उद्यम दो । विद्या दान करो । जहाँतक बने सहायता करो । अभिमान छोड़कर—जिन भगवान्ने तुम्हें शक्ति, साधन-सम्पत्ति प्रदान की है, वे प्राणीमात्रके हृदयमें बसते हैं; उनकी सेवामें खर्च करके भगवान्की सेवा करो और भगवान्को प्रसन्न करो । जितना हो सके अच्छा काम करो, बुरा काम तो कभी करो ही मत ।

५४—सभी देवताओंकी मूर्तियोंको प्रणाम करो, सबमें एक ही भगवान् हैं; परन्तु अपना एक इष्टदेव निश्चय कर लो । उसमें मनको लगाओ, उसका स्वामित्व स्वीकार करो । तुम उसके हो और वह तुम्हारा है । वह समर्थ है, सर्वव्यापक है । सारे ब्रह्माण्डका उत्पन्न करनेवाला, पालन करनेवाला और संहार करनेवाला वही है । आपत्तिमें और अन्त समयका साथी वही है—ऐसी दृढ़ भावना करके उसकी आराधना करो । उसके नामका कोई जप निश्चय कर लो । और फिर खूब जप करो; रोज जप करो; सबेरे, बेकार रहो तब, रातमें उठते-बैठते, चलते-फिरते, सोने जाओ तब, उठो तब और जागो तब—सदा भगवान्के उस नामका जप करो । इष्टदेव और उसके जपमें बार-बार परिवर्तन न करो । समझकर और हृदयमें जिस इष्टदेवके प्रति श्रद्धा बैठे, उसे निश्चयपूर्वक स्वीकार कर लो । पीछे बदलो मत । पतिव्रता एक ही पतिका हाथ पकड़ती है । मरते दमतक, संसारमें उसकी अपेक्षा श्रेष्ठ दीखनेवाले बहुत होनेपर भी, उसे छोड़कर दूसरेको अपना हाथ नहीं पकड़ाती । उसी प्रकार इष्टदेव और जपको स्वीकार करनेके बाद उसे बदलना नहीं चाहिये । कुछ स्वयं अनुभव न रखनेवाले वाचाल, दम्भी, पराये टुकड़ोंपर जीनेवाले, कामनाओंसे भरे हुए साधु या पण्डितका बाना धारणकर साधकसे कहते हैं कि

तुम अमुक जपका जाप करो, अमुक इष्टकी भक्ति करो। यह जप करो, इस इष्टदेवको मानो। उनका कहना नहीं मानना चाहिये। वे भुलावेमें डालते हैं, भ्रम पैदा करते हैं, अश्रद्धा उत्पन्न करते हैं। तुम जिसको भजते हो वह भगवान् ही हैं, वह जरूर तारेंगे—ऐसा न करनेवाला तरता नहीं, सुखी नहीं होता, संशयवाला होता है और नाशको प्राप्त होता है। इसलिये एक मनसे एक ही इष्टका आश्रय लेकर एक ही जप करो। एककी ही शरण लो, एकका ही ध्यान धरो। दूसरे सभी देवताओंमें वही है, ऐसा जानो।

५५—जगत्में सत्य और प्रिय बोलनेवाले बहुत ही दुर्लभ हैं। कभी वे मिलें तो उनके दर्शनसे, उनको प्रणाम करके, उनको संतुष्ट करके, उनके साथ सत्सङ्ग करके पवित्र हो जाओ। उनकी अपेक्षा भी जो सत्य और प्रिय बोलनेवाला विषयभोग तथा उसकी इच्छाका भी त्याग कर चुका है, जीभके रसका भी त्याग कर चुका है और जिसने क्रोधको भी जीत लिया है, ऐसा महापुरुष तो अत्यन्त ही दुर्लभ है।

५६—पुण्यके प्रभावसे अथवा श्रम करके तुम मिष्टान्न भोजन आनन्दसे करते हो, पर वह स्वाद जबतक वह पदार्थ जीभके ऊपर रहता है तभीतक है न? और उसके बाद? कुछ नहीं। विशेष खा लिया होगा तो चित्त अशान्त रहेगा, अकुलाहट होगी। पुण्यसे अथवा श्रमसे धन बहुत पैदा किया। फिर उसे अपने इच्छानुसार खर्च करेंगे—जब जिसे देना होगा, देंगे। उसके बाद? इस धंधेमें तुमने क्या कमाया? केवल श्रम। कमानेमें तो श्रम होता ही

है; परन्तु धन खर्च करनेमें भी सूक्ष्मतासे विचार करें तो मनमें सदा विक्षेप ही होता रहता है। चिन्ता तो लक्ष्मीकी बहिन ही है। जहाँ लक्ष्मी जाती है, चिन्ता साथ जाती है और क्लेश तो लक्ष्मीके कपालमें सदा ही रहता है? जहाँ लक्ष्मी जाती है, वहीं चिन्ता और क्लेश जरूर रहते हैं। बहुत धन पैदा किया और बहुत खर्च कर दिया तो इसमें जीवने क्या कमाया? जीवको तो भूख है सदासे, चिरकालसे, अनेक युगोंसे, अनेक जन्मोंसे—भूख है जीवको शान्तिकी और आनन्दकी। धनके खर्च करने और कमानेमें श्रम, चिन्ता और विक्षेप रहते हैं। किसी-न-किसी कारणसे विक्षेप होता है। लक्ष्मीमें शान्ति और आनन्द नहीं है। शान्ति और आनन्द तो आत्मामें हैं, परमात्मामें हैं। तुम्हारे पूर्व-पुण्यसे लक्ष्मीकी प्राप्ति हो तो भी उसके द्वारा भगवान्‌की आराधना करो, सत्सङ्ग करो और धन देते रहो भगवान्‌के निमित्त, भगवद्भक्तके निमित्त।

५७—पति और पत्नी एक दूसरेसे प्रसन्न हों, तभी अच्छी संतान उत्पन्न होती है। व्यभिचारीकी संतान मूर्ख होती है। पति पत्नीको और पत्नी पतिको प्रसन्न रक्खे। वस्त्र, आभूषण, अन्न और सम्मान आदि प्रदान करके पति पत्नीको प्रसन्न करे। जिसमें अधर्म न हो, परिवारके लिये दुःखप्रद न हो, पत्नीकी ऐसी सारी इच्छाओंको पति पूर्ण करे। और स्त्री पतिकी सेवा करके, सत्य और मीठी वाणी बोलकर, बालकोंकी सँभाल रखकर, घर और घरकी वस्तुओंको सँभालकर, व्यवस्थापूर्वक रखकर, सुन्दर भोजन बनाकर और हाव-भाव तथा भोग-विलाससे पतिको प्रसन्न करे। एक दूसरेकी न्यूनाधिक अप्रसन्नतासे बाँझपन आता है, दुर्गुणोंसे युक्त संतान उत्पन्न होती है। पत्नीको व्रत-नियमका

पालन करना चाहिये। पति पत्नीको साथ लेकर धर्माचरण, दान-पुण्य, सत्सङ्ग, तीर्थसेवन और सेवाका कार्य करे। दोनों सहयोगसे, प्रेमसे, भगवद्भक्तिसे संसारसे तर जायँगे। कलहसे इस जीवनमें भी दुःख है और परलोकमें भी दुःख है। कलहका त्याग करो। जहाँ प्रसन्नता है, एक दूसरेको देखकर मनमें आनन्दित होते हैं, वहाँ सुख-सम्पत्ति, शान्ति और आनन्दका वास होता है।

५८—जो पुरुष परायी स्त्रीकी कभी इच्छा नहीं करता, बल्कि अपनी ही स्त्रीमें प्रीतिमान् होता है, उसका वीर्य शुद्ध बीज कहलाता है। और जो स्त्री परपुरुषके सङ्गकी कभी इच्छातक भी नहीं करती, वह शुद्ध-योनि कहलाती है। ऐसी शुद्ध योनिमें शुद्ध बीज पड़े तो अच्छी संतान उत्पन्न हो। परस्पर अन्तःकरणसे प्रेम करनेवाले स्त्री-पुरुषसे शान्त, गम्भीर, बुद्धिमान्, धर्मात्मा, उद्यमी और दृढ़ निश्चयवाली तथा सुन्दर गठनवाली संतान होती है।

५९—मनके शान्त हुए विना सुख नहीं होता। शरीरकी सारी क्रियाओंको देखो। समस्त क्रियाओंका कर्ता तो मन ही है। सुख-दुःखका अनुभव करनेवाला भी मन ही है। मनके विना कुछ भी अनुभवमें नहीं आता। सुखके लाखों और करोड़ों साधन मौजूद हों, परंतु यदि मनमें अशान्ति है तो उन सारे साधनोंसे सुख नहीं होता। बल्कि अशान्त मनसे दुःखका ही अनुभव होता है। इसलिये ऐसा प्रयत्न करो कि मन शान्त रहे। मनमें इच्छाएँ उठती हैं, कामनाकी तरङ्गें उठती हैं और जबतक उन कामनाओंकी पूर्ति नहीं होती, तब-तक मन अशान्त रहता है। कामनाके उठनेमें एक सेकंड भी नहीं

लगता और उसकी पूर्तिमें वर्षों लग जाते हैं, और तबतक लाखों दूसरी कामनाएँ उठ खड़ी होती हैं। क्या किसीकी कामनाएँ पूरी हुई हैं ? गरीबका मन कहता है, मुझे राजा होना है और राजा होनेके पहले अनेक दूसरी कामनाएँ उठ खड़ी होती हैं। इसलिये भाई, प्रयत्न करके मनमें जो कामनाएँ उठें उन्हें मनहीमें लीन कर दो। सुखके लिये कोई कामना न करो, कामना न करनेसे ही सुखका अनुभव होता है। जिसका मन सदा कामनारहित और निर्विकार रहता है उसके लिये सदा सुख, सदा शान्ति और सदा आनन्द है।

६०—क्या तुम कथा बाँचते हो ? व्याख्यान देते हो ? भाषण देते हो ? लोगोंको उपदेश देते हो ? भक्त होकर गाते-गवाते हो ? नाचते-कूदते हो ? तुम कहते हो कि यह सब तुम दूसरोंके लिये करते हो ? यह तुम्हारा कहना झूठा है। तुम दूसरोंसे ऐसा कहकर धोखा देना चाहते हो। तुम्हारे हृदयमें वासना छिपी बैठी है—धनकी, मानकी, प्रतिष्ठाकी, बड़े होनेकी, बड़ा दिखलानेकी, सामनेवालेका भला कर डालनेकी—यदि कोई न कोई कामना तुममें न होती तो तुम इतनी सारी मेहनत न करते होते। तुम्हारे भीतर वासनाएँ और विकार भरे पड़े हैं, उनका पोषण करनेके लिये यह सब कर रहे हो। पीछे मुड़ो, अंदर तलाश करो। अपने मनकी मैल निकालकर ईश्वरकी शरणमें जाओ। तुम लोगोंको प्रसन्न करनेके लिये नयी-नयी बातें गढ़ते हो, नये-नये दृष्टान्तों और आख्यानोंको तैयार करते हो; लोग प्रसन्न हों—इस उद्देश्यसे नये-नये रागोंके भजन बनाते हो, गाते हो, नाचते हो, कूदते हो और लोग वाह-वाह कहते हैं, तब भीतरसे प्रसन्न होते हो। क्यों, ठीक यही है न ? यही है तुम्हारी कामना, यही

है तुम्हारी वासना । तुम यह सब भले ही करो; परंतु लोगोंको प्रसन्न करनेके लिये मत करो, भगवान्‌को प्रसन्न करनेके लिये करो । लोगोंको सुनानेके लिये भजन न बनाओ, भगवान्‌को सुनानेके लिये भजन बनाओ । तुम जो कुछ करो सो भगवान्‌के लिये करो । और ऐसा करोगे तो तुम्हारा जीवन बदल जायगा । तुमने आजतक लोगोंको खुश रखनेके लिये बहुत कुछ किया । अब भगवान्‌को प्रसन्न करो । परोसनेवाला दूसरेको परोसता है, उससे उसका पेट नहीं भरता । अपने खाये बिना अपनी भूख मिटनेवाली नहीं । जीवको अनन्त कालसे भूख है भगवान्‌की । भगवान्‌को पाये बिना उसकी भूख मिटनेवाली नहीं और लाखों दूसरे उपायोंसे उसको शान्ति मिलनेवाली नहीं है । संसारको प्रसन्न करनेसे क्या मिलेगा ? मनको प्रसन्न करो, और मन पूर्ण प्रसन्न हो गया तो भगवान् मिले ही हुए हैं । यह निश्चय जानो । जिस प्रकार माँसे अलग होकर रोता हुआ शिशु थोड़ी देरके लिये खिलौनेसे प्रसन्न हो जाता है और फिर पीछे रोने लगता है, उसी प्रकार मन सम्पत्ति और मानसे थोड़ी देरके लिये प्रसन्न हो जाता है; परंतु पीछे क्लेशका ही अनुभव करता है । तुम जो कुछ भी करते हो, भगवान्‌की प्राप्तिके लिये ही करो ।

६१—धनकी इच्छा, स्त्री-भोगकी इच्छा, स्वादिष्ट भोजनकी इच्छा, कुटुम्बके भरण-पोषणकी इच्छा और यश तथा मान-प्राप्तिकी इच्छा—ये पाँच जिसमें नहीं होतीं, उसे सच्ची शान्ति मिलती है । इन पाँचोंमेंसे यदि एक भी होगी तो सच्ची शान्ति नहीं आने देगी । इसलिये धीरे-धीरे प्रयत्न करके इन पाँचोंका त्याग करो । तुम दूसरोंको पढ़ाते हो,

दूसरोंके सुधारकी चेष्टा करते हो, दूसरोंको उपदेश देते हो; परंतु तुम अपने मनको तो देखो । तुम्हारे मनमें उपर्युक्त पाँचों हैं कि नहीं ? इन पाँचोंके गये बिना तुम्हें सुख मिलेगा ही नहीं ।

६२—सगे-सम्बन्धी और स्नेही लोगोंकी भूल मत निकालो, उनको उलाहना मत दो । दूसरोंसे उनकी भूल मत कहो, दूसरोंके सामने तो उन्हें उलाहना दो ही मत । ऐसा करोगे तो स्नेह और मेल बना रहेगा । मान प्रदान करनेसे स्नेहका सम्बन्ध और मेल बना रहता है और बढ़ता है । और आवश्यक सहायता तथा समयानुसार सेवा करनेसे स्नेह बढ़ता है । अपनेसे छोटे और अधीनको सुधारनेके लिये, भूल हो तो उसे मीठे वचनोंसे एकान्तमें भूल समझा दो, किंतु तिरस्कार-तकरार न करो !

६३—आत्मा तो नित्यमुक्त है ही । और परमात्मा ही शरीरमें आत्मा कहलाता है । शरीर तो जड है । आत्माके समीपमें रहकर चित्त ही सारी क्रियाएँ करता है । आत्मज्ञान, मनोनाश तथा वासना-क्षय हुए बिना मोक्ष कभी नहीं होता, ऐसा शास्त्र कहते हैं; और ये तीनों एक दूसरेके अवलम्बनपर रहते हैं । इसलिये आत्मज्ञानके बिना पूर्णतः वासनाका नाश नहीं होता, और वासनाका नाश होनेपर ही मनोनाश होता है । अतएव साधकको चाहिये कि सत्सङ्ग, विचार और उपासनाके द्वारा आत्मज्ञान प्राप्तकर वासनाका नाश करे । वह इस प्रकार कि 'सारा जगत् जो दीख पड़ता है, वह परिणाम-शील और विनश्वर होनेके कारण क्षणिक और असत्य है, और इसी कारण जगत्के पदार्थों तथा प्राणियोंसे कभी नित्य सुखकी

प्राप्ति नहीं होती। आनन्द जगत्में नहीं है। आनन्दस्वरूप तो आत्मा ही है।' इस प्रकार विचार करते-करते आत्मा और परमात्माके सिवा किसी भी पदार्थ या प्राणीकी इच्छाका त्याग करे।। इच्छामात्रका त्याग करनेसे, अर्थात् वासनाका नाश होनेसे मनका नाश हो जायगा और मनके निष्क्रिय हो जानेपर आत्माका दर्शन होगा। यह साधन नित्य करे और इसकी सिद्धिके लिये जप, ध्यान, सदाचार, एकान्त, सत्सङ्ग, विचार, सात्त्विक आहार और परमात्माका आश्रय—इनका नित्य सेवन करे। पुण्य-कर्म करे, पवित्र तीर्थोंका सेवन करे।

६४—रोज सबेरे, रात्रिको सोनेके पहले, मध्य रात्रिमें जागनेपर और सबेरे उषाकालमें उठकर नीचे लिखी क्रिया करे। हो सके तो इस प्रकार आसन जमावे। एकान्तमें पहले कुशासन, उसपर मृगचर्म और उसके ऊपर ऊनका आसन और उसके ऊपर सूती कपड़ेका आसन लगावे। ऐसा न हो सके तो जहाँ जैसा साधन हो उसके ऊपर एकान्तमें बैठे और पद्मासन या वैसा ही सुलभ आसन लगावे, सीधा होकर बैठे, आँखें बंद कर ले और मनसे कहे कि 'किसी प्रकारका विचार किये बिना भगवान्का दर्शन करनेकी बाट जोहते हुए एक चित्तसे बैठना है। तुझे कोई खास जरूरी काम हो तो उसे पहले ही कर ले।' इस प्रकार मनको सावधान करके आँख मीचे। यदि अन्धकार दिखलायी दे तो आँखें बंद किये बैठा हुआ अन्धकारको देखता रहे। यदि मन किसी विचारमें लगना चाहे तो उसे रोके। जिस प्रकार किसीकी बाट जोहता हुआ मनुष्य एक चित्तसे टकटकी लगाकर देखता है, उसी प्रकार आँखें बंद किये भगवान् अभी ही प्रकट होंगे, इसी एक उत्सुकतासे अन्धकारको

देखा करे । इस प्रकार नित्य अभ्यास करनेसे वह अन्धकार दीखना बंद हो जायगा और अनेकों प्रकारके दृश्य दिखलायी देने लगेंगे—जैसे विपुल तेज, चन्द्र, तारा, आकाश, बिजली, वर्षा, सूर्य आदि ज्योति इत्यादि, परन्तु यह न समझे कि यह जो कुछ दिखलायी देता है, सो परमात्मा है । यह बिल्कुल पक्की बात है कि जो कुछ दिखलायी देता है, वह परमात्मा नहीं, ऐसा करते-करते यदि साधक सगुण साकार परमात्माका उपासक होगा तो जिस रूपमें उसकी श्रद्धा होगी, वही रूप धारण करके भगवान् उसे दर्शन देंगे और यदि वह निराकार निर्गुणका उपासक होगा तो उसे आत्मदर्शन होगा और उसकी समाधिमें स्थिति हो जायगी । उपासकको साकार परमात्माके आकारका दर्शन होता है । कोई कहते हैं—आकार भगवान् नहीं है, आकार धारण करनेवाला भगवान् है । जिस प्रकार कपड़ा पहननेवाला राजा होता है, परंतु कपड़ा राजा नहीं होता, उसी प्रकार रूप परमात्मा नहीं है, बल्कि रूपधारी परमात्मा है ।* इसलिये रूपका अनादर न करके रूपके साथ रूपमें रहनेवाले अरूप परमात्मामें लीन होना चाहिये । यह अभ्यास जीवके अनेक जन्मका अन्त करनेवाला अन्तिम अभ्यास है, अतः इसमें जल्दबाजी नहीं करनी चाहिये । धीरज रखकर प्रतिदिन शान्तिसे करते जाना चाहिये । प्रयत्न करते रहनेसे भगवान्‌की कृपासे समय आनेपर फल मिलेगा ।

इस क्रियाके करते समय किसी भी अङ्गको दबावे नहीं, नाक या कानको न दबावे । स्वाभाविक रीतिसे शान्त चित्तसे मुँह और

* वस्तुतः साकार भगवान्‌के रूपमें और भगवान्‌में कोई अन्तर नहीं है । दोनों ही सच्चिदानन्दस्वरूप तथा एक हैं । रूप भी वही और रूपधारी भी वही ।

आँखें बंद करके बैठे । बैठनेका समय धीरे-धीरे बढ़ावे । जल्दीबाजी न करे । आज पाँच मिनट तो महीने भर बाद दस मिनट—इस प्रकार बढ़ावे । एक ही ध्यान रक्खे कि मनमें तरङ्गें न उठने पावें । उठें तो तुरंत रोक दे । इस क्रियाको करनेवाला गृहस्थ हो तो विषयभोगको कम करे । खाने-पीनेमें गरम मसाला, मिर्चा, भारी भोजन न करे । सात्त्विक आहार करे और वह भी अधिक परिमाणमें नहीं । इस क्रियामें बैठनेके पहले, यदि पाखाना-पेशाबकी हाजत हो तो हो आवे । इस क्रियाके करनेकी जिसे इच्छा हो उसे बहुत श्रमवाला व्यावहारिक काम नहीं करना चाहिये । मन चिन्तारहित और प्रसन्न होना चाहिये । मन कामनारहित, भगवान्के प्रति भक्तियुक्त होना चाहिये । दिन-प्रति-दिन जैसे-जैसे बैठनेका समय बढ़ता जायगा वैसे-वैसे ही मनकी शक्तियाँ भी धीरे-धीरे बढ़ेंगी । दूरकी बात सुन पड़ेगी, दूरकी वस्तु दीख सकेगी, मनकी इच्छाएँ पूर्ण होंगी । दूसरे अपने अधीन रहेंगे । वाक्-सिद्धि प्राप्त होगी । संकल्प-सिद्धि होगी । पर इन सबोंमें यदि मन ललचाया तो जान लो कि पतन हो गया । ये सब भगवान्के मार्गमें विघ्न हैं; इसलिये इनका आदर न करे । अहङ्कार न करे । तमाशा करके लोकमें नाम कमानेकी इच्छा न करे । इनको अलग छोड़कर आगे बढ़ना चाहिये और मनको शान्त रखना चाहिये । बाहर तो लोक तथा जगत्से मन सदा शान्त रहे और भीतर कामनाएँ न रहनेसे मन शान्त रहे । इस प्रकार सदा शान्तमन रहे । इस बातको सदा लक्ष्यमें रखकर अभ्यास करते जाना चाहिये । इससे समयानुसार जगत् सिनेमाके दृश्यों-जैसा जान पड़ेगा और परमात्माका दर्शन होगा ।

इस अभ्यासके करते समय सदा सीधा होकर बैठना चाहिये नहीं तो नींद आयेगी। इस अभ्याससे क्रोध कम होगा। इन्द्रियोंके भोग नीरस लगेंगे। व्यवहारकी बातें कम रुचिकर होंगी। शान्ति अधिक रहेगी। इस अवस्थामें जब साधक बैठे तब यदि मन दूसरी कोई बात न सुने, दूसरा कुछ न दीखे, दूसरी बात न जाने और दूसरा कुछ न विचारे तो समझना चाहिये कि साधन परिपक्व होता जा रहा है। अभ्यास करनेके बाद उठनेपर पता लगेगा कि मन दूसरी बात सुनता, देखता, जानता या विचारता था या नहीं। धैर्य धारण करके इस अभ्यासमें लगे रहना चाहिये।

६५—अब जाग्रत् अवस्थाके दूसरे मनके लिये अभ्यास बतलाता हूँ। इस प्रकार रहो कि मनमें सदा प्रसन्नता बनी रहे। शरीरमें चित्त रहता है। वह शरीरसे बाहर चला जाय तो कहा जाता है कि मनुष्य मर गया। शरीरमें चित्त रहते समय यदि कोई अंट-संट बोलता या बर्तता हो तो लोग कहते हैं कि उसका चित्त खिसक गया है; वह पागल जान पड़ता है। अब तीसरे प्रकारके ऐसे लोग हैं कि जिनका चित्त किसीके कुछ कहनेपर या विपत्तिमें या कामनामें एक बार अपनी जगह छोड़कर खिसक जाता है और फिर पीछे ठिकाने आ जाता है। ऐसे लोग संसारी कहलाते हैं। जब चित्त अपनी जगह छोड़कर खिसक जाता है, उस अवस्थामें मनुष्य जो कुछ बोलता है वह दुःखदायी होता है। खिसके हुए चित्तकी स्थितिमें ही क्रोध, शोक, हर्ष, विषाद, चिन्ता, तिरस्कार, अपमान और दुःख होता है। इन सारे द्वन्द्वोंका अनुभव करते

हुए चित्तमें जब शान्ति और समझ आती है, तब वह अपने स्थानपर आता है और इन सबके लिये उसे परिताप होता है। अब रही चौथी अवस्था, जिसमें चित्त चाहे जो कुछ भी हो परन्तु अपने स्थानको नहीं छोड़ता और सदा स्थिर रहता है, शान्त रहता है, दृढ़ रहता है। यह चित्तकी 'स्थितप्रज्ञ' अवस्था है, यह उसकी समाहित अवस्था है। गीतामें कहा है कि जिसके चित्तकी अवस्था सुख-दुःखमें, मान-अपमानमें, शीत और उष्णमें तथा दूसरे द्वन्द्वोंमें, सदा शान्त रहती है उसको परमात्मा नित्य समीप भासते हैं। इसलिये यही एक लक्ष्य रखना चाहिये कि मन शान्त रहे। जगत्में चाहे जो हो, जिनको अपने आत्मीय समझते हैं उनको चाहे जो हो, परन्तु मनको सदा प्रसन्न रखना चाहिये। इसका नाम है 'जाग्रत्-समाधि'। सारे जगत्का नाश हो जाय, तो चित्त ऐसा है कि उसे नया बना सकता है; क्योंकि जगत् तो किसीके चित्तकी ही सृष्टि है। चित्त कर्ता है, जगत् कार्य है। कार्यकी अपेक्षा कर्ताकी कीमत अधिक है। कार्यका नाश हो जाय तो कर्ता दूसरा कार्य खड़ा कर देगा, परन्तु कर्ताका नाश हो जाय तो कार्य किस प्रकारसे हो सकेगा? इसलिये जगत्में सम्पत्ति, शान्ति और आनन्दकी इच्छा करनेवालेको चाहिये कि प्रत्येक उपायसे चित्तको नित्य शान्त तथा क्रोध, उद्वेग और शोकसे रहित बनाये रहे।

जगत्में बड़े-से-बड़ा वह है कि जिसका मन चलायमान नहीं होता। क्रिया जो कुछ भी करो, पर करो स्वस्थ मनसे। स्वस्थ मनसे शुभ ही क्रिया होती है। जगत् रणक्षेत्र है। उसमें चित्त योद्धा है। जो चित्त जगत्के आघात और प्रलोभनोंसे अपनी जगहको छोड़कर

भाग जाता है वह हारा हुआ और मारा हुआ है, और इसलिये सदा सुखी रहता है। और जो सदा अडिग, अचल और जाग्रत् रहता है, वह सदा अपने समीप रहनेवाले परमात्माकी कृपासे नित्य आनन्दित रहता है। जो चित्त जगत्के आन्दोलनसे हार मानकर जड़ बन जाता है, वह नगण्य है। इसलिये वह तो नाशको प्राप्त होता है। अतएव प्रतिदिन यह अभ्यास करो, जिससे चित्त स्वस्थ, शान्त तथा सदा प्रसन्न रहे। कायर होकर दूर न भागे और योद्धाके समान बीचमें खड़े रहकर आघातको सहता हुआ जो अडिग डटा रहे, वह शूरवीर है। जो घरमें बैठा रहता है, जो रणक्षेत्रसे डरकर भाग जाता है, वह शूरवीर नहीं। तुम युद्धका प्रसङ्ग खड़ा मत करो, युद्धका प्रसङ्ग तैयार मत करो। शूरवीर बिना कारणके युद्ध खड़ा नहीं करते, परन्तु युद्ध आ पड़नेपर उसका स्वागत करते हैं। उसी प्रकार तुम भी जगत्में रहते हुए जो प्रसंग आ पड़े, उनमें धीर, शान्त और प्रसन्न चित्तसे खड़े रहकर कर्तव्य-कर्म करनेके अभ्यासी बनो। इस प्रकारका अभ्यासी काञ्चन-कामिनीके कारण स्वधर्मसे चलायमान नहीं होता, परुष वचन सुनकर क्रोध नहीं करता, अपमान-से अस्वस्थ नहीं होता, लोभसे धर्मका त्याग नहीं करता। दुःखमें उसका धैर्य और उद्यम कम नहीं होता। वह सदा उद्यमी, सदा स्वस्थ और सदा भगवान्में लीनचित्तवाला होता है।

६६—शरीरमें अन्तःकरण ही शरीरको क्रिया करनेके लिये प्रेरित करता है और शक्ति प्रदान करता है। अन्तःकरणमें यह शक्ति निजी नहीं होती, बल्कि उसे यह शक्ति परमात्मासे मिलती है। परमात्मा कहें या आत्मा—वह सबके शरीरमें है। अन्तःकरणमें

दो शक्तियाँ हैं—इच्छाशक्ति और प्राणशक्ति । अन्तःकरणमें इच्छा ज्ञानके अधीन होती है । सबको सुखकी इच्छा होती है । वह सुख किस वस्तुमें है, क्या करनेसे मिलेगा, यह निश्चय करना उसके ज्ञानके अधीन है । पहले चित्त यह जानता है कि अमुक वस्तुमें सुख है । यह जानकारी उसे देखने, सुनने, बाँचने आदिसे होती है । अमुक विषयमें सुख मिलेगा यह जानकर ही वह मनसे उसका चिन्तन करता है । चिन्तन करनेसे उस वस्तुके प्रति प्रीति उत्पन्न होती है । प्रीति उत्पन्न होनेसे उसके लिये इच्छा होती है । इच्छा होनेपर प्रयत्न होता है । प्रयत्न करते समय यदि विघ्न आते हैं तो उनका प्रयत्नके द्वारा ही नाश करता है और जिसका नाश नहीं हो सकता उसके प्रति क्रोध होता है । क्रोध होनेपर मोह होता है । मोह होनेपर बुद्धिमें भ्रम पैदा होता है । इस कारण बुद्धि सारासार, लाभ-हानि आदिका निश्चय नहीं कर सकती । मतलब यह है कि बुद्धि अपनी जगहसे खिसक जाती है और उस खिसकी हुई बुद्धिवालेका नाश हो जाता है । इस सारे क्रमको देखते हुए जीव जिसके संसर्गमें आकर जैसे संस्कारवाला होता है वैसा करनेकी उसकी बुद्धि होती है । इसीलिये जिसके-जिसके सम्पर्कमें इन्द्रियोंके द्वारा मन आता है वैसे-वैसे संस्कार चित्तमें जमा होते जाते हैं । अतएव जिसको जैसा होना हो, वैसा संस्कार जिससे मिले, उसके संसर्गमें आना चाहिये । मनुष्य व्यसनी होनेके पहले व्यसनीके सङ्गमें, व्यसनसे आनन्द होता है—ऐसी बातें करनेवालोंके सङ्गमें आता है । इन सब बातोंसे उस व्यसनके प्रति मनमें प्रीति उत्पन्न होती है और उसके बाद क्रिया होती है । सारी क्रियाओंके लिये यह मिसाल है । विषयोंमें

जीव रचा-पचा रहता है, इसका कारण यह है कि विषयोंमें सुख है इस बातको बतानेवाला साहित्य वह देखता है, बाँचता है, सुनता है और जानता है। इस प्रकारके अनन्त जन्मोंके संस्कार अन्तःकरणमें भरे हैं। भोगोंमें दुःख है, जन्म-मरण हैं—आदि जानकर उनसे मनको मोड़ना, उन सारे संस्कारोंका नाश करना, उनसे विरुद्ध संस्कार जहाँसे मिलें, उन्हें लेना चाहिये।

एक ओर भोग हैं, जिनसे जन्म-मरण, सुख-दुःख आदिका चक्र चालू रहता है। दूसरी ओर भोगका त्याग है, जिससे मोक्ष मिलता है। यह मोक्ष भोगके त्याग, सच्चे ज्ञानके बिना नहीं मिलता। मनुष्य जो उपवास करता है या व्रत-नियम लेकर भोग त्याग करता है, वह थोड़े समयके लिये होता है। अन्तःकरणमें—मनके भीतर तो भोगके सुखका रसास्वाद बना ही रहता है। समय आनेपर विशेष बलपूर्वक वह भभक उठता है। जबतक भोगोंके लिये मनके अंदरसे रस नहीं चला जाता, तबतक भोगोंका त्याग नहीं होता। वह रस कब जाता है? जब कि आत्मा या परमात्माका साक्षात्कार हो जाता है। बालक लकड़ीके घोड़ेके उपयोगका आनन्द तभीतक मानता है जबतक वह सच्चे घोड़ेकी सवारी नहीं जान लेता। सच्चे घोड़ेका सवार होनेपर तो वह लकड़ीके घोड़ेको याद भी नहीं करता। उसी प्रकार आत्मसुखका स्वार्थ प्राप्त होनेपर मन भोग-सुखका त्याग कर देता है। यह आत्म-सुख सत्सङ्ग, विचार, वैराग्य और भगवान्की भक्तिके बिना कभी नहीं मिलता। इसलिये नित्य ही इनका सेवन करना चाहिये।

६७—अन्तःकरणमें प्राण और इच्छा दोनों रहते हैं। प्राणसे क्रिया करनेमें बल मिलता है और इच्छासे यह मालूम होता है कि वह क्रिया कैसे करनी चाहिये। यह अन्तःकरणका खोखला, जिसमें प्राण और इच्छा दोनों रहते हैं, तीन गुणोंवाला होता है—सत्त्व, रज और तम। किसी भी जीवका अन्तःकरण—चींटीसे ब्रह्मापर्यन्त सभीका इन तीनों गुणोंसे युक्त होता है। किसीमें सत्त्व अधिक होता है, रज और तम थोड़ा। किसीमें रज अधिक होता है, सत्त्व और तम थोड़ा। और किसीमें तम अधिक होता है, और रज-सत्त्व थोड़ा। परंतु प्रत्येकमें होते ये अवश्य हैं। आहार, सङ्ग और संसर्गसे ये गुण प्रवेश करते हैं। ये तीनों गुण क्या-क्या क्रिया करते हैं और इन तीनों गुणवालेको क्या-क्या रुचता है, यह बात गीतामें कही गयी है। गुण तो ये तीनों सभीमें होते हैं परंतु जिसमें जो विशेष गुण होता है, वह अपने अनुकूल क्रिया करता है। फिर इन गुणोंकी विशेषता नित्य, सब समय एक-सी नहीं होती। एक ही व्यक्तिमें कभी सत्त्वगुण विशेष झलकता है, कभी रजोगुण और कभी तमोगुण। इस चित्तको वश करनेका कोई दूसरा साधन जगत्‌में नहीं है, यह स्वतन्त्र है। यह चित्त स्वयं अपने-आप ही अपने प्रयत्नसे ही शान्त होता है। चित्तमें तीन गुण होते हैं। उनमें तमोगुणको रजोगुणसे शान्त करना चाहिये। यानी रजोगुणसे युक्त सत्कर्मों और धार्मिक क्रियाओंसे दबाना चाहिये। रजोगुणको सत्त्वगुणसे शान्त करे और सत्त्वगुणको निर्गुणसे शान्त करे। ये सारी क्रियाएँ अपने-आपमें शान्त होती हैं—(१) सदाचारका पालन करना, (२) सत्सङ्ग करना, (३) धर्म-कर्म और भगवान्‌के

निमित्त कर्म करना, (४) सात्त्विक आहार, सद्ग्रन्थोंका वाचन, सात्त्विक स्थानका सेवन, एकान्तवास और सत्पुरुषोंके सहवासमें रहना, (५) भगवान्‌की भक्ति करना और भगवान्‌के अनन्यशरण होना।

विवेक, विचार, भोग-त्याग, कर्मफल-त्याग और सत्य तथा प्रिय वाणीका सेवन—इन सबको करते-करते यह चित्त भगवान्‌में लीन होता है।

६८—दो अभ्यास बतलाता हूँ, इन दोनोंको सिद्ध करनेके लिये प्रतिदिन अभ्यास करना चाहिये—

१· सत्य बोलना और मीठा बोलना।

२· कभी क्रोध नहीं करना। घबराना नहीं। क्रिया जो कुछ भी करो, पर शान्तचित्तसे, प्रसन्न मनसे। मतलब यह कि इस प्रकार वर्तना चाहिये कि मन सदा प्रसन्न रहे, सदा शान्त रहे। प्रतिदिन ध्यान रक्खो कि मन प्रसन्न और शान्त तो है? बोलनेके पहले यह देख लो कि जो कुछ बोलते हो वह सत्य और प्रिय तो है? यह अभ्यास सहज ही नहीं सिद्ध होता है। अनेक वर्षोंके प्रयत्नसे सिद्ध होगा, परंतु इसके सिद्ध किये बिना छुटकारा नहीं। इसलिये खूब धीरज और लगनके साथ इस अभ्यासको सिद्ध करनेका यत्न करना चाहिये।

६९—जैसा सङ्ग वैसा मन। इसलिये शान्त, सदाचारी और ज्ञानी भक्तका सङ्ग करना चाहिये। वैसा व्यक्ति न मिले तो भगवान्‌के अवतारकी कथाओंके ग्रन्थोंको बाँचना चाहिये। ज्ञान और

भक्तिके ग्रन्थोंको बाँचना चाहिये। विषय-वासनाको निर्मूल करनेवाली पुस्तकोंको बाँचना चाहिये। जैसा बाँचोगे वैसा ही आचरण करनेकी बुद्धि होगी। जगत्की अनित्यता और आत्मा-परमात्माकी नित्यताको प्रयत्न करके बुद्धिमें उतारना है। मन सुखकी इच्छामें दुःखसे भरपूर जगत्के भोगोंकी ओर फँसा है। उनमेंसे उसे पीछे लौटाकर परमात्मा, जो आनन्दका भण्डार है, उसमें लगाना है। इस कार्यमें समर्थन प्रदान करनेवाले पुरुषोंका सङ्ग तथा पुस्तकोंका वाचन करना चाहिये। इसके विरुद्ध दूसरे सङ्गोंका त्याग करना चाहिये।

७०—इच्छासे जन्म-मरण है। इच्छासे देहकी प्राप्ति है। चित्त भोगकी इच्छा करता है। शरीरके विना भोग भोगा नहीं जा सकता। इसलिये जैसे भोगकी इच्छा की जायगी, उसीके अनुकूल भोग भोगनेवाले शरीरकी प्राप्ति होगी। इसलिये जीवनमें इच्छाओंको शान्त करनेका प्रयत्न करना चाहिये। इसके तीन अभ्यास हैं—पहला, मनको निर्विचार, निःसंकल्प-अवस्थामें बैठानेका अभ्यास—प्राणायाम, ध्यान, समाधि आदिके द्वारा करना। यह अभ्यास स्वतन्त्र नहीं है। इस अभ्याससे उठनेके बाद मन इच्छाएँ करने लगता है। और इस अभ्यासकी विलक्षणता यह है कि इससे इच्छाको झट सिद्ध करनेकी शक्ति आ जाती है। इसलिये यह मार्ग देखनेमें तो रोचक है, पर भयङ्कर है। और स्वतन्त्ररूपसे इच्छात्याग या मोक्षकी प्राप्तिके लिये सीधा मार्ग नहीं है। दूसरा मार्ग है निष्काम भक्तिका। भगवान् जो अखिल विश्वके कर्ता, नियन्ता, पालनकर्ता, संहारकर्ता, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ सर्वेश्वर, सर्वशक्तिमान् आदि गुणोंसे युक्त हैं, उनके निराकार या साकार रूपकी उपासना करके, उनके सिवा अन्य सारी इच्छाओंका

त्याग करके, उन्हींको ही प्राप्त करनेकी इच्छासे, इसके सिवा अन्य सारी इच्छाओंके त्यागकी धीरे-धीरे चेष्टा करनी चाहिये। यह मार्ग विशेष सहज है। इसमें आनेवाले विघ्नोंको उसके उपास्यदेव नष्ट कर देते हैं। इस मार्गमें एक बार पड़ जानेवाले चित्तको उसका इष्ट अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। इस मार्गद्वारा चित्त इच्छारहित होकर परमपदमें प्रवेश करता है। तीसरा मार्ग है—विचारमार्ग जिसको ज्ञानमार्ग कहते हैं। इसमें वैराग्यकी, तीव्र बुद्धिकी तथा तपकी विशेष आवश्यकता होती है। मैं वही सत्य और अविनाशी-पद-स्वरूप परब्रह्म हूँ; और जो कुछ है या होगा, वह सब नाशवान्, मिथ्या और मायामय है और इस कारण दुःखरूप है, इसलिये उसकी इच्छाका त्याग करके इच्छारहित मनसे निःसंकल्प हो रहना चाहिये। यह अभ्यास उपर्युक्त दोनोंसे ही सहज जान पड़ता है, पर है बहुत कठिन। और इस मार्गमें चलनेवाले कब लुट जायँ, कब बेहाल हो जायँ, यह बात समझमें नहीं आती। इस कालमें उत्तम-से-उत्तम यह है कि पहले और अन्तिम मार्गको गौणरूपसे यानी साधनके रूपमें उपयोग करके मध्यमार्गको मुख्य-रूपमें माने, और भक्ति, ईश्वरका ध्यान, ईश्वरका ज्ञान—इन तीनोंके साथ भक्तिमार्गका साधन करे।

तुमको जो मार्ग अच्छा लगे, उसीपर चलनेकी चेष्टा करो। पर करोड़ों उपाय करनेपर भी भोगकी इच्छाका त्याग किये बिना—सुखकी इच्छा त्यागे बिना—अखण्ड शान्ति, अखण्ड आनन्द, मोक्षकी प्राप्ति होगी ही नहीं। सारे शास्त्रोंका लक्ष्य इच्छात्यागके रहस्यमें है। इच्छात्याग और मनकी शान्ति—दोनों परस्पर सम्बन्ध-

वाले हैं, अतः साथ ही सिद्ध होते हैं । इच्छा और व्याकुलता दोनोंका त्याग किये बिना करोड़ों खर्च करनेपर भी मनको सच्ची शान्ति या सच्चा सुख अथवा आनन्द नहीं मिलेगा ।

७१—ज्ञानके बिना मोक्ष नहीं, इसे पक्का समझो । ज्ञान यानी यह यथार्थ ज्ञान तभी होता है जब चित्त निर्मल होता है । निर्मल चित्तमें जो ज्ञान स्फुरित होता है, वह यथार्थ ज्ञान कहलाता है । फलकी इच्छाके बिना दान, तप, पुण्य-कर्म और उपासना—ये सब चित्तको निर्मल करनेके साधन हैं । चित्तको मलिन बनानेवाली तो इच्छा है और चित्तको निर्मल बनानेवाला इच्छाका त्याग है । इच्छाके त्याग-के बिना लाखों अन्य उपायोंसे चित्त निर्मल नहीं होता और चित्तके निर्मल हुए बिना करोड़ों अन्य उपायोंसे सच्चा ज्ञान नहीं होता । सच्चा ज्ञान निर्मल चित्तमें काहे-से होता है, यह जानना चाहिये । कोई कहेंगे ज्ञान पुस्तकमें लिखा है । दुनियाँमें जो पुस्तकें लिखी गयी हैं, वे बुद्धिसे लिखी गयी हैं । बोलनेवाली और सिखानेवाली तो बुद्धि ही न है ? और वह बुद्धि जड है न ? परंतु वह बुद्धि भगवत्स्वरूप आत्माके पास रहकर उसके द्वारा ही सब कुछ जानती है । आत्मा ज्ञानका खजाना है, ज्ञानस्वरूप है । आत्मासे अखिल जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और नाश होता है । इस आत्मासे ही ज्ञान प्राप्त होता है । जिस प्रकार निर्मल शीशा वस्तुको यथार्थरूपमें दिखला देता है, उसी प्रकार निर्मल चित्तमें आत्मा यथार्थतः प्रकाशित होता है । आत्मा कल्पवृक्ष है, आत्मा चिन्तामणि है, आत्मा कामधेनु है । निर्मल चित्तमें जो-जो कल्पनाएँ होती हैं, उन्हें आत्मा सिद्ध कर देता है; परंतु उसी निर्मल चित्तसे कामनाओंको सिद्ध करने जाते ही, इच्छाओंके खड़े होते ही

चित्तकी निर्मलता मिट जाती है, वह मलिन हो जाता है और उसकी शक्ति नष्ट हो जाती है। इसलिये शुद्ध चित्तमें इच्छाओंको उठने न देना और शुद्ध चित्तको आत्माके समीप रखना बन पड़े तो यथार्थ ज्ञानकी प्राप्ति हो सकती है और उस ज्ञानके उद्भवके साथ ही मुक्ति प्राप्त होती है।

ज्ञान दो प्रकारका है। एक प्रत्यक्ष और दूसरा परोक्ष। निर्मल चित्तवालेको प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। वह जगत्‌को और अपनेको यथार्थरूपमें समझता है। समस्त कामनाओंका त्याग करके या तो भगवान्‌की उपासना करनेसे या ब्रह्मनिष्ठ सद्‌गुरुकी सेवासे ज्ञान प्राप्त होता है। सद्‌गुरुकी सेवा करनेसे गुरु महाराज प्रत्यक्ष बोध प्रदान करते हैं। इन दोनों उपासनाओंके सिवा तीसरा मार्ग नहीं है। दोनों वस्तुतः एक ही हैं। गुरुकी उपासना भी परमात्माके ही रूपमें करनी पड़ती है। गुरुके हाड़-मांसके शरीरमें रहनेवाले चैतन्यदेवकी ही उपासना करनी पड़ती है। भगवान्‌की मूर्तिमें भी रहनेवाले चैतन्य-देवकी ही उपासना करनी पड़ती है। आपाततः रीति कुछ जुदी है। इन दोनोंमें निष्काम सेवा करनेवालेको अथवा मोक्षकी इच्छासे सेवा करनेवालेको अपने आत्मामें ही काल-क्रमसे ज्ञान स्फुरित होता है। उसे ऐसा मालूम होता है कि कोई भीतरसे कह रहा है। इस प्रकारसे उपासना करनेवालोंको उपास्यदेव बलात् शुद्ध ज्ञान प्रदान करके मुक्ति देता है। इसलिये जो कुछ कर्म या उपासना, दान-पुण्य, भजन-कीर्तन या तप आदि करे, वह फलकी इच्छासे रहित भगवान्‌की प्राप्ति या मुक्तिकी प्राप्तिके निमित्त करे। ऐसा करते रहनेपर काल-क्रमसे मुक्ति प्राप्त हो जायगी। किया हुआ कार्य असफल नहीं होता।

निष्काम उपासना अवश्य ही मुक्ति प्रदान करती है । इसलिये करनेमें लग जाओ और धीरज धरकर प्रयत्न तथा लगनसे उसीमें लगे रहो ।

७२–अप्रसन्न चित्त होते ही बुद्धि अपनी जगहसे खिसक जाती है । भ्रमित हो जाती है । बुद्धि अपने संतुलनको खो देती है । सारासारका विचार नहीं रह जाता । न बोलने योग्य बातें बोल बैठता है, न करने योग्य काम कर बैठता है । यह सब अप्रसन्न चित्तसे होता है, तो फिर चित्तको सदा प्रसन्न कैसे रक्खा जाय ? चित्तको अप्रसन्न करनेवाले मनुष्य मिलेंगे ही, ऐसे प्रसङ्ग आवेंगे ही, चित्त अप्रसन्न हो ऐसी बातें होंगी ही । चित्तको अप्रसन्न करनेवाले संयोग किसीको न प्राप्त हुए हों, क्या ऐसा कहीं हुआ है ? शीत-उष्ण, सुख-दुःख, मान-अपमान, जीवन-मरण, जरा और व्याधि, सबका आना-जाना होगा ही, इन द्वन्द्वोंके बीच चित्त किस प्रकार प्रसन्न रह सकता है ? इसीके लिये शास्त्रोंका अभ्यास और सत्सङ्ग है । इतना ही जाननेके लिये है । शास्त्र और संत कहते हैं कि अनुकूल और प्रतिकूल तो होते ही रहेंगे । पर उन सबसे तुम असङ्ग हो । तुम आत्मा हो । उनका तुमपर कोई असर नहीं है, उनका असर तो शरीरपर है । तुम तो नित्य-मुक्त, शुद्ध-बुद्ध, निर्मल आत्मा हो, अविनाशी हो, निर्विकार हो । चित्तमें यह ज्ञान जिस परिमाणमें बसेगा, उसी परिमाणमें चित्तमें प्रसन्नता रहेगी । आत्मज्ञानके बिना चित्तमें नित्य प्रसन्नता रहती ही नहीं । गीता और सांख्यदर्शन तथा दूसरे शास्त्र बतलाते हैं कि 'मैं असङ्ग हूँ, आत्मा हूँ'—यह दृढ़ निश्चय किये बिना सच्ची प्रसन्नता, शान्ति और आनन्दकी आशा करना व्यर्थ है ।

७३—विचारसागर या पञ्चीकरण घोख (रट) कर बोलनेसे कोई ज्ञानी नहीं हो सकता । अथवा वेदान्तकी पुस्तकोंको पढ़कर कण्ठाग्र करके बोलनेसे कोई ज्ञानी नहीं बन सकता । इस लोक या परलोककी कोई भी कामना जिसके चित्तको आकर्षित नहीं कर सकती, वही ज्ञानी है । जिसका चित्त कामनारहित होनेके कारण निर्मल और शान्त है, जिसकी सारी आशा-तृष्णा शान्त हो गयी है, वह ज्ञानी है । ज्ञानीमें मान नहीं होता, दम्भ नहीं होता । उसमें अहिंसा, क्षमा, सरलता सदा रहती है, गुरुजनकी उपासना होती है, पवित्रता होती है, स्थिरचित्त होता है, मनोनिग्रह होता है, इन्द्रियोंके भोगोंके प्रति वैराग्य होता है, अहङ्कारका अभाव होता है, जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधिके कारण शरीरमें और संसारमें जो दुःख और दोषोंको बारंबार देखता है, पुत्र-स्त्री और घर आदिमें जिसकी आसक्ति नहीं है, अच्छे और बुरे संयोगोंमें जिसका चित्त स्थिर और शान्त रहता है, भगवान्‌में निष्काम भक्ति होती है, एकान्त सेवन होता है, जनसमुदायमें जिसे प्रीति नहीं होती है, जिसमें आत्मज्ञान और तत्त्वज्ञान वास करता है, ऐसे ज्ञानीके लक्षण गीताके तेरहवें अध्यायमें कहे गये हैं । इनको साधक अपने जीवनमें उतारनेका प्रयत्न करे । चित्तके भोगमें आकर्षणका ही नाम जन्म-मरण है और चित्तको परमात्मामें लीन करनेका नाम मोक्ष है । इसलिये प्रत्येक उपायसे चित्तको भोगसे खींचकर परमात्मामें लगाओ । इस अभ्याससे सच्ची शान्ति, सुख, आनन्द और मुक्तिकी प्राप्ति होगी ।

७४—अब चित्तके शान्त होनेका उपाय बतलाता हूँ । जहाँ प्राकृतिक वातावरण हो, जहाँ बैठकर महापुरुषोंने तप किया हो,

ऐसे नदी, तालाब, सरोवर, समुद्र, पर्वत आदिके समीप तीर्थस्थानोंमें जाना चाहिये। वहाँ जानेपर वहाँके उपद्रवरहित वातावरणसे चित्तमें शान्ति आयेगी। वहाँ जाकर भी खाने-पीने और भोग-विलासमें समय नहीं लगाना चाहिये। वहाँ जाकर दान-पुण्य, सत्सङ्ग, भगवन्नामका जप आदि करे। भोगका त्याग करे। ब्रह्मचर्यका पालन करे। भारी भोजन न करे। हो सके तो फलाहार या एक वक्त भोजन करे। इस प्रकारका किया हुआ तीर्थसेवन मनको शान्त करके मोक्षके मार्गमें ले जाता है।

दूसरे, किसी-न-किसी इष्टदेवकी उपासना करे। बेकार समयमें, घूमते-फिरते और काम करते सदा इष्टदेवके नामका जप करे और प्रतिदिन नियमित बैठकर भी करे। भगवत्कथाका श्रवण करे, कीर्तन करे, भगवान्‌की मूर्तिका प्रेमसे दर्शन करे, प्राणिमात्रके प्रति प्रीति और दया रक्खे। भगवान्‌के मन्दिरको झाड़ना-बुहारना, साफ-सुथरा रखना, हो सके और शक्ति हो तो नया मन्दिर बनवाना, पुरानेकी मरम्मत कराना। यदि यह न हो सके तो दूसरे जो ऐसा काम करते हों उसमें सहायता करना। ऐसा काम करना कि जिससे प्राणिमात्रको सुख पहुँचे। दूसरे करते हों उसमें मदद करना। जिसका सम्पर्क हो प्रसन्नचित्तसे उसके साथ काम करे, हँसकर अलग हो, किसीको धोखा न दे। किसीका कुछ ले नहीं। मीठी और सत्य वाणी बोले। सबको या तो भगवत्-स्वरूप जाने या आत्म-स्वरूप। किसीका तिरस्कार न करे, किसीका अपमान न करे। जो बन पड़े, सो दे डाले। जितनी बन पड़े, भलाई करे। काम-धंधा अपने धर्मानुसार करता रहे और भगवान्‌का भजन करता रहे। देव,

ब्राह्मण, गाय, गुरु, पूज्यजन, रोगी, बालक और आश्रित लोगोंका सम्मान करे और उनको संतोष दे। गुणोंको अपनेमें उतारे। सद्गुणसे सुख होता है और दुर्गुणसे दुःख होता है। चित्तकी शान्ति ही सुख है। चित्तकी अशान्ति ही दुःख है। इसलिये प्रत्येक उपायसे अपने दुर्गुणको निकालकर सद्गुणको धारण करे। इसीसे सच्ची शान्ति होगी।

७५–शास्त्र, पुराण तथा वैसे ही दूसरे धार्मिक ग्रन्थ या इतिहास पढ़े। उनमें लिखी बातें सच्ची हैं या झूठी, इसका विचार और चर्चा करने न बैठे। केवल उनका सार ग्रहण करे। उनमें जो लम्बा वर्णन मिलता है सो सार समझानेके लिये ही। कुछ बातें तो ऐसी होती हैं, जो सच्ची नहीं जान पड़तीं। कितनी ही बातें ऐसी भी होती हैं, जिनसे देवताओंमें अश्रद्धा उत्पन्न होती है। तुमको तो इन सबमें इतना ही जानना है कि ऐसे-ऐसे सामर्थ्यवाले और तपके भण्डार देवता तथा देवता-जैसे दूसरे लोग भी चले गये तो मेरी क्या गिनती है? जिसने जन्म लिया है वह तो मरेगा ही। जो माया है वह अदृश्य होगी ही। जिसका संयोग है उसका वियोग होना ही है। यह सब तो होता ही रहेगा। सब ही निर्मित है। सिनेमाका फिल्म जिस प्रकार निश्चित है और पर्देके ऊपर कुछ नहीं होनेपर भी उसमें नदी, जंगल, पहाड़, शहर और प्राणिमात्र दिखलायी पड़ते हैं। बोलते, चलते-फिरते और काम करते दीख पड़ते हैं, वे सब जिस प्रकार असत्य हैं और वहाँ सफेद पर्देके सिवा सचा कुछ भी नहीं है, उसी प्रकार यह जगत् परमात्मारूपी पर्देके ऊपर चेष्टा करता दीख पड़ता है, पर वह मिथ्या है—नाशवान् है। वास्तविक तो

परमात्मा है। जगत् जो दीख पड़ता है वह तो दीखता ही रहेगा। वह रुकेगा नहीं, सदा चलता ही रहेगा। सब निश्चित है। जो कुछ होनेवाला है, वह निश्चित है। इसलिये मनको शान्त कर भटकना छोड़कर देखा करो कि 'मैं आत्मा हूँ, जगत्से असङ्ग हूँ, परमात्माका अंश या तद्रूप हूँ।' इसका अभ्यास करते हुए सदा आनन्दमें रहनेका अभ्यास करो।

७६—संसारका अनुभव तो चित्त करता है। सुख-दुःख, जन्म-मरण सबका चित्तको ही अनुभव है। यह चित्त शस्त्रोंसे नहीं मरता। विष देनेसे नहीं मरता। पानीमें डूबता नहीं। आगमें जलता नहीं। किसी लौकिक उपायसे नहीं मरता। शरीरके मरनेपर भी यह नहीं मरता। एक शरीरको छोड़कर दूसरा शरीर धारण करता है। इस प्रकार लाखों शरीरोंको धारण करता और त्याग करता है। पर वह थकता नहीं और जहाँ जाता है वहीं नया बन जाता है। इस स्थूल शरीरके द्वारा यह भोग भोगता है। चित्तकी खूराक हैं इच्छाएँ। जैसी इच्छाएँ होती हैं वैसे ही उसका विस्तार बढ़ता है। इच्छाओंको भोगनेके लिये उनके अनुरूप देह धारण करता है। भोग भोगते थकता नहीं—तृप्ति होती ही नहीं। सुखके लिये भोगकी इच्छा करता है और भोगको पाकर तथा भोगकर सुखके बदले दुःख पाता है। अब यदि इच्छा करना छोड़ दे तो इस भूलभूलैयासे छूट जाय, नहीं तो करोड़ों उपायोंसे यह चित्त मरनेवाला नहीं है। और जबतक चित्त मरता नहीं, तबतक सच्ची शान्ति नहीं होती। परमात्मारूपी सागरमें चित्तरूपी बुद्बुदा फूलता-फलता है। उसमें इच्छाओंका गोट भरा है। इच्छाएँ चली जायँ तो वह परमात्मामें

अखण्ड आनन्दमें समा जाय। और इच्छाएँ खड़ी होती रहेंगी तो शरीर धारण करता ही रहेगा। सुख-दुःख, जन्म-मरण होते ही रहेंगे।

सांख्य, योग, वेदान्त और भक्तिमार्ग तथा दूसरे जो भी मार्ग हों, सब चित्तसे इच्छाओंका त्याग करानेके लिये ही हैं। बड़े-से-बड़े देवताका शरीर क्यों न हो, उसमें इच्छाएँ हुईं कि सुख-दुःख-का रगड़ा चालू हुआ। देवता, दैत्य, मनुष्य तथा प्राणीमात्रको सुख-दुःख तो होते ही रहेंगे। तुम जिस लोकमें भी जाकर शरीर धारण करोगे, वहीं सुख-दुःखका रोना-पीटना तुम्हारे साथ ही पहुँचेगा। शरीरका अर्थ है सुख-दुःखका अनुभव करानेवाला चोला। और जबतक यह चित्त नामका लिङ्गशरीर इच्छा-त्यागके द्वारा छूटता नहीं तबतक जन्म-मरण नहीं मिटता। इसलिये प्रत्येक उपायसे इच्छा त्याग करनेका अभ्यास करो। ऐसा अभ्यास करो कि चित्तमें संकल्प न उठे और वह शान्त बैठा रहे। यह कार्य कठिन है। अतिशय कठिन है, परंतु इसके किये बिना छुटकारा नहीं। विचित्रता तो यह है कि संकल्पके बिना चित्त बैठा रहे और थोड़े समयके बाद उठ खड़ा हो तो उसका संकल्प निःसंकल्पतासे उत्पन्न हुई शक्तिके परिमाणमें फलीभूत हो जाता है। जोर पकड़ता है और उसका वेग बढ़ता है। इसलिये वह बहुत दुःखदायी है। योगी, तपस्वी, भक्त यहाँ पहुँचकर अटक जाते हैं। बहुत दिनोंतक संकल्परहित रहनेपर चित्तका संकल्प सिद्ध हो जाता है। उसको सिद्धि कहते हैं। यह सिद्धि साधककी सच्ची दुश्मन है। उसको मार्गसे हटानेवाली है और मोक्षके मार्गमें पूरी विघ्नरूप है; इसलिये इसका त्याग करना चाहिये। इस सिद्धिके बलसे चमत्कार करनेवाले, आशीर्वाद और

शाप देनेवाले, तमाशा दिखलानेवाले—सभी पामर इच्छाओंके दास ईश्वरीय मार्गसे भ्रष्ट हुए दयाके पात्र हैं।

७७—एक ओर है प्रकृति, दूसरी ओर हैं परमात्मा। बीचमें जीव है। जीव प्रकृतिसे ललचाता है और यह समझकर कि उससे शाश्वत सुख, शान्ति और आनन्द मिलेगा, प्रकृतिके भोगोंको भोगता है। उनको भोगनेपर जब सुख, शान्ति और आनन्द नहीं मिलता, तब वह उससे मुँह फेरकर परमात्माकी ओर मुड़ता है, और वहाँ ठीक न लगनेपर फिर प्रकृतिकी ओर मुड़ता है। इस प्रकार जीवकी गति इधर-से-उधर और उधर-से-इधर हुआ करती है। प्रकृतिको छोड़कर परमात्माकी सेवा करनेवाले साधक चार प्रकारके होते हैं। पहले दुखी—जो प्रकृतिसे दुखी होकर उस दुःखसे छूटनेके लिये परमात्माकी शरण लेते हैं। दूसरे जिज्ञासु—जो समस्त प्रकृतिको दुःखरूप जानकर उससे छूटनेके और भगवत्प्राप्तिके अभ्यास-में लगे हुए हैं। तीसरे हैं अर्थी—जो यह समझते हैं कि परमात्मा-से अमुक प्रकारकी वस्तुको प्राप्तकर मैं सुखी हो जाऊँगा। इसलिये उस वस्तुके लिये वे परमात्माकी उपासना करते हैं। और चौथे हैं ज्ञानी—ज्ञानीको यह निश्चय हुआ रहता है कि प्रकृतिके भोग नाशवान्, मिथ्या और दुःखदायी हैं। इसलिये उनकी इच्छामात्रका त्याग करके वे निरन्तर परमात्माकी भक्ति करते रहते हैं। दुखी और अर्थी दुःखके निवारण और अर्थकी प्राप्तिके लिये परमात्माको भजते हैं और यथार्थ भक्तिके द्वारा सफल-मनोरथ होते हैं; परंतु परमात्मा-की कृपासे दुःखकी निवृत्ति और अर्थकी प्राप्ति होनेके कारण वे परमात्माके संसर्गी, प्रेमी और शरणागत हो जाते हैं। और इससे

वे दोनों ही प्रकारके जीव पीछे अत्यन्त श्रद्धासे परमात्माकी निष्काम सेवा करते हैं और अन्तमें परमात्माको पाते हैं; क्योंकि दुःखकी निवृत्ति और अर्थ (भोगके साधनों) की प्राप्तिमें वे परमात्माके सिवा अन्य किसी आधारको नहीं जानते-देखते । इसलिये उनकी परमात्मामें विशेष दृढ़ भक्ति हो जाती है ।

७८–लड़के लट्टू फिराते हैं । तुमने कभी लट्टू फिराया है ? कभी देखा है ? नहीं देखा है तो देख लेना । लट्टू हाथमें लेकर उसमें डोरी लपेटकर लड़का फेंकता है । लड़केके हाथसे लट्टू छूट जाता है, परंतु उस लकड़ीके लट्टूमें पैठी हुई शक्ति उस लट्टूको धुरीपर गोल चक्कर कराती हुई नचाती है । आगे-पीछे घुमाती है, ऊँचा-नीचा करती है । लड़केकी शक्ति किस प्रकार लट्टूमें पैठी और पहले ऐसे फिरना, तब वैसे फिरना–यह सारी विधि उसके भीतर कैसे आयी ? यह सब बातें फिरानेवाला नहीं जानता । उसी प्रकार यह ब्रह्माण्डरूपी लट्टू परमात्माके द्वारा प्रविष्ट करायी हुई शक्तिके द्वारा फिर रहा है । निश्चित नियम और गतिसे ब्रह्माण्डरूपी लट्टू फिरा करता है, रुकता नहीं; कुछ समझमें नहीं आता । प्रतिदिन ये तारा, ग्रह, नक्षत्र, चन्द्र, सूर्य–सभी बिना गिरे कैसे घूमा करते हैं ? कौन इनको घुमाता है ? सारे प्राणी रात-दिन जीवन-पथमें किसी-न-किसी प्रवृत्तिमें लगे रहते हैं, मृत्युपर्यन्त कभी उन्हें अवकाश नहीं मिलता । और तुम भी तो उन्हींमेंसे एक हो न ? तुम जरा-सा खड़े रहो । विचार करके देखो तुम यह सब क्या कर रहे हो ? तुम्हारा ध्येय क्या है ? तुम किधर जा रहे हो ? तुम्हारा मार्ग तुम्हें ध्येयकी ओर ले जा रहा है या तुम जहाँ-के-तहाँ गोल चक्कर लगा

रहे हो ? देखो और विचारो । ध्येय और ध्येयके मार्गका निश्चय करो, और उसी रास्तेसे जानेके लिये पूरा प्रयत्न करो । तुम चिरकालतक प्रयत्न करते-करते मंजिलको पार करके ध्येयको प्राप्त करोगे । प्राणी-मात्रका ध्येय तो अखण्ड आनन्द है । उसे प्राप्त किये बिना तुम्हें शान्ति नहीं मिलेगी । शेष सब कुछ तो दृश्य है, वह तो लट्टूके समान घूमता ही रहेगा । रोकनेसे वह रुकनेवाला नहीं । केवल तुम जो इस दृश्यसे अलग हो, इस वेगसे किनारे जाकर परमात्माकी भक्ति करके उसे प्राप्त करो ।

७९–जिसके चित्तमें कभी विकार नहीं होता वह सदा मुक्त है । चित्त सदा प्रसन्न रहे, ऐसा अभ्यास करो । इस अभ्यासके लिये जिनसे चित्त अप्रसन्न होता हो उन सबका त्याग करो ।

१. अत्यधिक अयुक्त परिश्रम करनेसे चित्त अप्रसन्न होता है । इसलिये कभी ऐसा परिश्रम नहीं करना चाहिये जिससे विशेष थकावट आ जाय ।

२. दूसरेकी अनुमतिके बिना, दिये बिना, मेहनतके बिना और अधिकारके बिना मुफ्तमें किसीकी चीज लेनेसे चित्त अप्रसन्न होता है । इसलिये ऐसी चीज कभी न लो । यदि कोई कहता है कि बिना मेहनतके प्राप्त करनेसे चित्त राजी रहता है तो वह भूल है । चित्तका राजी होना और चित्तका प्रसन्न होना, ये दो पृथक् वस्तुएँ हैं । जिसके परिणाममें चित्तमें ग्लानि और चिन्ता न हो और प्रसन्नता मिले, उसे ही सच्ची प्रसन्नता जाननी चाहिये ।

३. दूसरेको दुःख देनेसे चित्त अप्रसन्न होता है, इसलिये इसका त्याग करो ।

४. सत्य और प्रिय वाणीसे, दान देनेसे, दया करनेसे, इन्द्रियों और मनका निग्रह करनेसे, दूसरेको मान देनेसे और हरिका भजन करनेसे चित्त प्रसन्न होता है, अतएव इन सबका आचरण करो ।

५. किसीका अपमान करनेसे चित्त अप्रसन्न रहता है, इसलिये उसका त्याग करो ।

६. गरिष्ठ पदार्थ विशेषरूपमें खानेसे चित्त खिन्न होता है, इसलिये उनका त्याग करो ।

७. बेकार बोलनेसे, व्यर्थ वाद-विवाद करनेसे, किसीके साथ वैर करनेसे, किसीका अहित करनेसे, चोरी, दुराचार, झूठ, दुर्व्यसन और दुर्जनका सङ्ग करनेसे चित्त अप्रसन्न रहता है, इसलिये इसका त्याग करना चाहिये ।

८. उद्यमहीन रहनेसे, स्त्रीका विशेष सहवास करनेसे और विशेष प्रसङ्ग या आवश्यकताके बिना दूसरेका अन्न खानेसे चित्त अप्रसन्न रहता है, इसलिये उसका त्याग करो ।

८०—शरीरमें क्रियामात्रका करनेवाला, सारे अनुभवोंका करनेवाला, एक शरीरको छोड़कर दूसरे शरीरमें जानेवाला चित्त ही है । इस चित्तमें तीन गुण हैं । चाहे चींटीका शरीर हो या देवताका, प्रत्येक शरीरधारीके चित्तमें तीन गुण बसे होते हैं । न्यूनाधिक हो सकते हैं । तीन गुण हैं—सत्त्व, रज और तम । तमोगुणप्रधान चित्तको आलस्य, तन्द्रा, अज्ञान, क्रोध आदि होते हैं । रजोगुणप्रधान चित्त कर्ममें रचा-पचा रहता है और सत्त्वगुणप्रधान चित्तमें सुख, शान्ति और ज्ञान आदि प्रकट होते हैं । चित्तमें रहनेवाले ये

तीनों गुण कम-ज्यादा हो सकते हैं । रजोगुणके सेवनसे तमोगुण कम होता है । सत्त्वगुणके सेवनसे रजोगुण कम होता है । और सत्त्वगुण निष्कामभावके आचरणसे कम होकर निर्गुणताको प्राप्त होता है । अतएव सुख, शान्ति और ज्ञान तथा इनके द्वारा मोक्षकी इच्छा रखनेवालेको चाहिये कि सात्त्विकताको बढ़ानेवाली वस्तुओंका सेवन करे । सत्त्वगुणके बढ़ानेवाले ही आहार और संसर्गका सेवन करे । निष्काम भक्ति और सत्सङ्ग सत्त्वगुणको बढ़ाकर अन्तमें निर्गुण बनाकर मोक्ष प्रदान करते हैं । तमोगुण और रजोगुणको दबाकर चित्तमें सत्त्वगुणकी वृद्धि किये बिना, सात्त्विक नियमित आहार-विहार और सत्सङ्गके बिना, परमात्माकी निष्काम भक्ति किये बिना, सत्य, तप, दया और दानका सेवन किये बिना एवं मन तथा इन्द्रियोंका निग्रह किये बिना परमपदकी प्राप्ति नहीं होगी ।

८१—चित्तको जगत्मेंसे खींचकर परमात्मामें लगानेका नाम योग है । योगका अभ्यास करनेवालेका आहार नियमित होना चाहिये, सात्त्विक होना चाहिये । जिससे चित्तमें विक्षेप हो, वैसा आहार नहीं करना चाहिये । अधिक आहार तथा रजोगुणी और तमोगुणी आहारसे चित्तमें विक्षेप होता है, अतएव उनका त्याग करना चाहिये । ऐसा भूखा भी नहीं रहे कि चित्त भूखमें ही लगा रहे और विक्षिप्त रहे । काम भी वैसा ही और उतना ही करे जितना उकताये बिना प्रसन्न चित्तसे हो जाय । बहुत जागरण भी न करे । बहुत नींद भी न ले । विशेष सोनेसे तमोगुण बढ़ता है और चित्त अप्रसन्न होता है, बहुत जागरण करनेसे भी चित्त विक्षेपको प्राप्त होता है । अतएव दुःखका नाश करनेवाली भगवत्प्राप्तिके योगकी साधना

करनेवालेको चाहिये कि चित्तपर दृष्टि रक्खे और जिसमें चित्त सदा प्रसन्न रहे उसी हिसाबसे सारी क्रियाएँ करे ।

८२–तुमको लोग प्रमुख बनावें, मान प्रदान करें, तुम्हें राजा-महाराजाकी ओरसे मान मिले और खिताब मिले, लोगोंमें तुम्हारी वाहवाही हो । सब यह कहें कि 'आप हमें ज्ञान दीजिये, हमें मार्ग दिखाइये, हमारी सँभाल रखिये हम आपसे सनाथ हो गये हैं, आपके बिना हमारी कोई गति नहीं है ।' तुमको फूलोंकी माला पहनायी जाय, लोग तुम्हारा पैर छुएँ, तुम्हें भगवान्-जैसा या भगवान् ही समझें,—यह सब हो तो इससे फूल मत जाना । यह सारा आकर्षण तुम्हारे पतनके लिये है । तुम तो भगवान्के नियुक्त किये हुए उनके नौकर हो । यश मिले तो वह उसका है । तुम्हारे हृदयमें बैठा हुआ जो तुम्हें प्रेरित करता है और कार्य करनेकी शक्ति प्रदान करता है, वही दूसरेमें है । तुम अपनेमें दूसरेसे कोई विशेषता मान लोगे तो वही तुम्हारा पतन है । जैसे तुम्हारा शरीर पञ्चभूतोंका है, उसी प्रकार दूसरोंका भी है । जिस प्रकार तुम्हारा आत्मा भगवत्-स्वरूप है उसी प्रकार सबका है । तुममें यदि कोई विशेषता दीख पड़ती है, तो वह चित्तकी निर्मलताको लेकर है । वह निर्मलता तो भगवान्की दयासे भगवान्की प्रसादी है । भगवान्की दी हुई है । दूसरे लोग मान दें तो उससे फूल मत जाओ । जिसके लिये वे मान देते हैं वह बुद्धिकी शक्ति, शरीरकी शक्ति या लक्ष्मी अथवा वैभव—चाहे जो कुछ हो सब भगवान्के दिये हुए हैं । भगवान्के ही हैं । इसलिये उनको अपना समझकर हर्षाओ मत और फूलो मत । तुम और तुम्हारा सब कुछ भगवान्का है, यह बात न भूलो । और तुम्हें भगवान्-

को प्राप्त करना है, इसलिये उनके मार्गको न भूलो। बीचमें रह जानेके लिये अनेकों प्रलोभन और दयाके पात्र मिलेंगे; परन्तु वे सब भरमानेवाले हैं, इसलिये स्थिर चित्तसे भगवान्‌की ओर बढ़े जाओ। रुको मत। प्रमाद मत करो, गर्व मत करो और भगवान्‌को न भूलो।

८३—आशीर्वादके द्वारा यदि कोई धन, सम्पत्ति, ऐश्वर्य, राज्य, लक्ष्मी, पुत्र, स्त्री या जगत्‌की किसी दूसरी वस्तुको प्रदान करनेको कहता हो तो उसको तुम बड़ा न मानो। ये सारी वस्तुएँ जगत्‌की माया हैं। यदि कोई स्थलके समान ही जलके ऊपर चल सके तो उसे तुम बड़ा न मानो। जो आकाशमें मनकी गतिसे उड़ सके तो उसको बड़ा न मानो। जो जमीनमें दीर्घकालतक गड़ा रह सके, उसको बड़ा न मानो। जो विष खा ले और मरे नहीं, उसको बड़ा न मानो। जो आगमें चले और जले नहीं, उसको बड़ा नहीं मानो। जिसे काट डालें और वह जीवित हो जाय, उसे बड़ा न मानो। जो बहुत खा सके या जो बहुत दिनोंतक अनशन कर सके, उसको तुम बड़ा न मानो। जो मुर्देको जिला दे, जीवितको मुर्दा बना दे, जो यह तथा इससे अधिक चमत्कार करे, उसे तुम बड़ा न मानो। कुंकुम निकाले, पैसा निकाले, वर्षा बरसावे, अकाल डाले और इसी प्रकारके अनेक पाखण्ड कर सके, यदि ऐसा आदमी हो तो उसे बड़ा न मानो। ये सारे तन्त्र-मन्त्र, ओषधि, उपासना, योग और क्रियाके द्वारा साध्य हैं। मायाके विलास हैं और इन सबका प्रदर्शन करनेवाला वासनाका दास कोई पामर होता है। कोई धनके, कोई यशके, कोई भोगके, तो कोई बड़प्पनके तथा कोई दूसरी किसी इच्छाके दास होते हैं। बड़ा तो वह है कि जिसने

आशा और इच्छामात्रका त्याग कर दिया है, जिसने मन और इन्द्रियों-को वशमें कर लिया है, जिसने जगत्से मनको मोड़कर उसको नित्य भगवान्में जोड़ दिया है, जिसने काम और क्रोधका त्याग कर दिया है, जिसका मन सदा शान्त और प्रसन्न रहता है, जिसका मन प्राणिमात्रके प्रति प्रेमवाला होता है, जो प्राणिमात्रको भगवत्स्वरूप जानकर उस हिसाबसे बर्तता है, जो तमाम सचराचरको भगवान्में और भगवान्को सचराचरमें देखता है। जिसने अपने आत्माको भगवान्के रूपमें पहचाना है, जिसका कोई वैरी नहीं है, जो प्राणि-मात्रका हितैषी मित्र है और जिसका मन सदा भगवान्में रमता है। अतएव मायामें, सिद्धिमें, चमत्कारमें न फँसो। भगवान्में मनको पिरो दो, भगवान्में लीन हो जाओ।

८४—संसारके प्राणी या पदार्थोंका सेवन करनेसे जीवको आनन्द नहीं होता। जिस प्रकार काठका बनावटी पक्का आम दूरसे सच्चे पक्के आमके जैसा दिखलायी देता है, परंतु अनुभव करनेपर वह मिथ्या सिद्ध होता है, क्योंकि वह खानेमें नहीं आता, उसमें रस नहीं होता, उसी प्रकार जगत्के प्राणी या पदार्थोंका सेवन करने-पर उससे जीवको आनन्द नहीं होता। जो नाशवान् है, विकारी है और जिसके सेवनसे जीवको आनन्द नहीं होता, वह मिथ्या है। जीवको विषय-भोगसे आरम्भमें हर्ष होता है, पर परिणाममें चिन्ता, ग्लानि, श्रम और दुःख ही होता है, इसी प्रकार तमाम जगत्के प्राणी और पदार्थके सेवनसे होता है, इसलिये वह त्याज्य है। आनन्द है परमात्मामें; जीवको भूख है आनन्दकी। वह जगत्में भटकता है आनन्दके लिये, परंतु उसे मिलता है आनन्दके बदले

दुःख । परमात्माको शरण लिये बिना, परमात्मामें मनको लीन किये बिना, जीवकी आनन्दकी भूख कोटि-कोटि उपायोंसे भी मिटनेवाली नहीं है ।

८५–तुम अपना इष्टदेव निश्चित कर लो । परमात्मा तो एक है; व्यापक है; परंतु उसके सगुण स्वरूप भक्तकी रुचिके अनुसार अनेक हैं । जिसको जिसमें–जिस सगुण स्वरूपमें विशेष प्रेम हो उसको उसीके नामका जप करना चाहिये और उसीकी मूर्तिका ध्यान करना चाहिये । जप नित्य नियमितरूपसे करे । जपको बारंबार बदले नहीं । जिस एक जपको निश्चित कर ले, उसीको प्रतिदिन जपे । यदि किसी समय दूसरे नाम भी जपे जायँ तो कोई हानि नहीं । जैसे कि तुमने श्रीकृष्णको अपना इष्टदेव निश्चित कर लिया, और 'श्रीकृष्णः शरणं मम' –इस मन्त्रको निश्चित कर लिया । तब इसके जपकी माला तुम्हें रोज फेरनी चाहिये । और श्रीकृष्ण-की पूजा-अर्चना और ध्यान आदि करते हुए भी शङ्कर, गणेश, देवी, हनुमान्, सूर्य या दूसरे जो भी कोई देवी-देवता हों, उनके नाम भी प्रसङ्ग आनेपर प्रेमसे लेने चाहिये और उन सभी देवी-देवताओंको प्रेमसे प्रणाम करना चाहिये । जो परमात्मा श्रीकृष्णके रूपमें हैं वही शङ्कर, गणेश आदिमें भी व्यापक हैं । मूर्ति तो आधार है, शेष पूज्य और प्राप्त करनेकी वस्तु तो मूर्तिमें व्यापक भगवान् है । साधक जैसे-जैसे निष्कामभावसे जप करता है, जैसे-जैसे मूर्तिका पूजन, ध्यान आदि निष्कामभावसे करता है, वैसे-वैसे उसके राग-द्वेष, काम-क्रोध आदि धीरे-धीरे अपने आप मिट जाते हैं । साधक तो लगा रहे । पहले तो जप-ध्यानसे पूर्वके पाप नाशको प्राप्त होते

हैं। पश्चात् उस जप-ध्यानके प्रभावसे राग-द्वेष, काम-क्रोध आदि मल नाश हो जाते हैं; इसलिये भाई ! लगे रहो, श्रद्धापूर्वक लगे रहो। भलीभाँति नित्य नियमित जप करो। गृहस्थाश्रमी प्रतिदिन छः घंटा जप करे तो अच्छा जप करनेवाला कहलायगा और जिसको आजीविकाकी चिन्ता नहीं, वैसे साधु-संन्यासी आदि प्रतिदिन बारह घंटा जप-ध्यान करें तो वह अच्छा जप कहला सकता है। जिस किसीको अपने जपकी बात कहनेसे सुननेवाला उस जपके प्रति अश्रद्धा उत्पन्न करता है, और मनको जपसे डिगाता है। जप भगवान्‌के किसी भी नामका हो उससे तुम्हारा कल्याण होगा ही यह निश्चय मानो। श्रद्धा और भाव फल प्रदान करेंगे। इसलिये कमर कसकर लग जाओ। किये बिना मिलता नहीं। खाये बिना भूख मिटती नहीं। चले बिना गाँव आता नहीं। इसी प्रकार भजन किये बिना भगवान् नहीं मिलते।

८६—सङ्गसे प्रीति होती है। सङ्गमें रहे और उसके प्रति राग न हो यह सम्भव नहीं। मायिक पदार्थका सङ्ग करोगे तो उसमें राग होगा और उससे दुःख होगा। अतएव तुम गृहस्थाश्रमी हो या साधु, पर जगत्‌के प्राणी और पदार्थोंका, मायिक लोगोंका सङ्ग न करो, अथवा उतना ही करो जितना आवश्यक हो। सङ्ग तुम्हारे मनको उसके प्रति आकर्षण करके विह्वल बनाता है। तुम समझते हो कि माया क्या करेगी? मायाके बीचमें रहकर यह कहना कि 'मैं मायाको जीत लूँगा' तुम्हारी भूल है—मिथ्या बकवाद है। तुम्हें एक दृष्टान्त बताता हूँ। एक स्त्री है। थोड़ी देरतक तुम उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गको देखो। थोड़े ही समयमें राग उत्पन्न हो जायगा और

धीरे-धीरे तुम्हारा मन उसकी कामना करने लगेगा । ऐसी ही सबकी बात है; इसलिये जगत्‌में सुखकी कामना रखनेवालोंको जहाँतक बने, एकान्त-सेवन करना चाहिये । कभी प्रसङ्ग आ जाय तो उसके लिये जितना आवश्यक हो, बस उतना-सा ही जगत्‌का सङ्ग करे । जिस प्रकार किसी गंदी जगहपर जाते समय हम नाकपर कपड़ा डालकर जल्दीसे वहाँसे निकल जाते हैं, जैसे किसी काजल या कच्चे रंगकी कोठरीमें जानेपर दाग न लग जाय, इसका ध्यान रखकर सावधानीसे कपड़ेकी ओर नजर रखकर चलते हैं, उसी प्रकार जगत्‌के मायिक प्राणी और पदार्थोंके सङ्गमें ईश्वरकी ओर दृष्टि रखकर, ईश्वरकी शरण लेकर उनका जितना सङ्ग आवश्यक हो, बस, उतना ही बहुत सावधानीसे करना चाहिये । नहीं तो समझ लो कि अधःपात हो गया ।

तुम परस्त्रीके सङ्ग गाते हो, नाचते हो, कूदते हो, एकान्तमें बातें करते हो, सोते-बैठते हो—अरे मूर्ख ! यह तुम्हारे कल्याणके विनाशका मार्ग है । तुम समझते हो कि इससे तुम्हारा क्या होता है ? अरे मूर्ख ! तुम्हारी अपेक्षा अनेकों गुना अधिक शक्तिवाले मायाके मोहसे मार्गभ्रष्ट होकर धूलमें मिल गये । फिर तुम्हारी क्या गिनती ? मायिक पदार्थोंमें एक विशेषता यह है कि जैसे ही प्रेमसे तुमने उनकी ओर देखा या सुना कि तुम फँसे और फँसनेपर धीरे-धीरे ऐसे गहरे गढ़ेमें गिरोगे कि जहाँसे निकलना बहुत ही कठिन होगा । माया और मायाके पदार्थ दोनोंहीसे डरकर चलो । उनसे बचनेके लिये ईश्वरकी शरण लो । तुममें, तुम्हारी बुद्धिमें कोई विशेष शक्ति नहीं कि जो तुम्हें मायासे बचा दे । यदि तुममें शक्ति है तो

वह भगवान्‌की दी हुई है। भगवान्‌की शक्तिसे तुम मायासे अलग रहकर भगवान्‌को पा सकोगे। इसलिये सर्वभावसे भगवान्‌की शरण लो, अपनी शक्तिके मिथ्या अभिमानको तुम छोड़ दो। अपने मनको भगवान्‌में लगाओ। अपनी बुद्धि भगवान्‌को सौंप दो। भगवान् दीनदयालु हैं, वे तुम्हारा उद्धार करेंगे।

८७—शरीरकी सारी क्रियाओंका कर्ता तो मन ही है न? इस चित्तमें जैसे संस्कार और जैसी प्राणशक्ति होती है, उसी हिसाबसे क्रिया होती है। बराबर विचार कर देखो। ये संस्कार दो प्रकारके होते हैं—एक 'द्रव्य-संस्कार' और दूसरा 'भाव-संस्कार'। खान-पानके द्वारा जो संस्कार उत्पन्न होकर चित्तको प्रभावित करते हैं वह 'द्रव्य-संस्कार' है। और इन्द्रियोंके तथा मनके अनुभवद्वारा चित्तमें जो संस्कारभावना जाग्रत् होती है वह 'भाव-संस्कार' है। मनुष्य चाहे कितना ही शान्त या चतुर हो, पर उसको कड़ी भाँग या शराब पिला दिया जाय तो उसके द्रव्यसंस्कारका मनपर असर होते ही वह मनुष्य चाहे जैसे बकने लगेगा और विपरीत आचरण करने लगेगा। उसी प्रकार यदि कोई बुरे संस्कारवाला, मन्द आचरणवाला, व्यसनी और दुर्गुणसे भरा मनुष्य हो और उसके सहवासमें अच्छा आदमी बहुधा आवे तो उस दुर्गुणीके सहवाससे अच्छे आदमीके चित्तपर बुरा असर पड़ेगा और उसका जीवन बदल जायगा। मतलब यह है कि खान-पान आदिसे और सङ्गसे मनुष्यके मनके ऊपर विशेष असर पड़ता है और इस असरसे पूरा मनुष्य बदल जाता है। अतएव मुमुक्षुको चाहिये कि खान-पानके पदार्थोंपर विशेष ध्यान रक्खे। ऐसे पदार्थ खाने-पीने चाहिये कि

जिससे चित्त सदा शान्त स्थितिमें अपनी जगहपर रहकर सारा काम करे। आत्मारूपी कल्पवृक्षकी छायामें रहकर चित्त काम करता है तो उसकी अवस्था शान्त और समाहित होती है और उसमें वह सदा सुख और आनन्दका अनुभव करता है। खान-पानकी वस्तुओंके ऊपरी गुण-दोषके उपरान्त उन वस्तुओंका धर्मसे या अधर्मसे, प्रेमसे या तिरस्कारसे किसी प्रकार उपभोग किया जाता है, उसका भी संस्कार चित्तपर प्रभाव डालता है। इसलिये भाई! पहले तो तुम्हारे खान-पानके पदार्थ सात्त्विक और चित्तको शान्त रखनेवाले होने चाहिये और फिर वे धर्मसे प्राप्त और शान्त तथा प्रेमी हृदयवालेके द्वारा तैयार किये हुए होने चाहिये। साथ ही शान्त अवस्थामें भोजन किया जाना चाहिये। इससे तुम्हारा चित्त शान्त रहेगा। कहा जाता है कि जीवको सारे जीवनमें चित्तकी शान्ति ही एक ऐसी वस्तु है, जिसे प्राप्त करना है। दूसरी रही परायेके सहवाससे पड़े हुए चित्त-पर बुरे संस्कार। इसके लिये बहुत ही सावधान रहना चाहिये।

किसी सम्प्रदायमें दूसरेके—परायेके स्पर्शसे स्नान करना पड़ता है। वह सम्प्रदायवाला देहके स्पर्शको स्पर्श मानता है और देहको स्नान कराता है। यह बहुत ही साधारण बात है। *विशेष आवश्यक यह है कि नित्य अपने* समाहित चित्तको अछूता रखना चाहिये। दूसरेकी मलिनता उसका स्पर्श न करने पाये। अपना चित्त सदा शान्त, निर्मल और समाहित रहे। संसारमें रहते हुए, व्यवहार करते हुए, बहुतोंके संसर्गमें आते हुए अपना चित्त दूसरोंके विजातीय संस्कारोंसे अपवित्र तो नहीं हो रहा है, इसका ध्यान रक्खे। दूसरोंकी अपवित्रतासे उसमें रजोगुण, तमोगुणके

संस्कार प्रवेश करते हैं। अपने चित्तको आत्माकी छायासे बाहर खींचकर अनेक विपत्तियोंमें डालना है। इसलिये विजातीय खान-पानसे तथा विजातीय संस्कारवाले जीवोंसे अपना चित्त अपवित्र न हो, इसपर विशेष ध्यान रक्खो। और अपवित्र हो तो स्नान कर लो। इस स्नानमें चित्तको स्नान कराना होता है। भगवान्‌के नामका एकाग्रचित्तसे कम-से-कम तीन घंटेतक जप, प्रार्थना और निर्विचार-अवस्थामें बैठकर चित्तको भगवान्‌में लगाना, यही चित्तका स्नान है। सारांश यह है कि चित्तको भगवान्‌रूपी निर्मल सरोवरमें डुबकियाँ लगाना, उसमें डुबो देना ही चित्तका स्नान है। चित्तकी सहज अवस्था निर्मल अवस्था है। उसमें खान-पानके संसर्गसे संस्कार पड़ता है और उससे वह मलिन होता है। यह मलिनता भगवत्-सरोवरमें स्नान करनेसे मिटती है।

इस अभ्यासके करनेवालेको चाहिये कि वह नित्य चित्तपर दृष्टि रक्खे। यह 'अस्पर्श्य योग' कहलाता है। चित्तके ऊपर परमात्माका ही संस्कार पड़े, दूसरा कोई मलिन संस्कार न पड़े, इसका ध्यान रखना पड़ता है। जगत्‌में जो तुम्हारे सम्पर्कमें आवेगा, वह अपने संस्कार तुम्हारे चित्तपर डालनेका सहज प्रयत्न करेगा। इसमें जिसके संस्कार बलवान् होंगे, वह दूसरेपर असर डालेगा। इस प्रकार एक चित्तका दूसरे चित्तको अपने संस्कारके अनुसार बनानेका काम हमारे अनजाने, जगत्‌में सतत चला करता है। इसे 'चित्त-युद्ध' कहते हैं। हारा हुआ चित्त दूसरे जीते हुए चित्तकी अधीनता स्वीकार करके उसके संस्कारको ग्रहण करता है। इस प्रकार जगद्रूपी सागरमें अनेक चित्तोंका युद्ध चला ही करता है। अनेकों चित्त

कामना और जन्म-मरण आदिके भँवरमें गोता खाया करते हैं। जो चित्त दुर्गका आश्रय लिये विना, दृढ़ स्थिर आश्रयके बिना युद्ध करता है, वह शीघ्र ही हार जाता है और इधर-उधर दौड़-भाग किया करता है; परंतु जिसके चित्तको स्थायी आश्रय, आधार होता है, वह जमकर खड़ा रहता है। इस जगत्‌में स्थिर स्थायी तो एक भगवान् हैं, उनके सिवा सब कुछ अस्थिर है। अतएव चित्तको भगवान्‌के आश्रयमें रखकर जगत्‌के अनेकों चित्तके मलिन संस्कार न पड़ने दे और उसे सदा भगवान्‌में डुबाये रक्खे। भगवत्-रूपी जलसे उसे नित्य स्नान कराता रहेगा तो चित्त निर्मल रहेगा।

भगवान्‌में चित्तको जोड़नेका नाम 'योग' है। भगवान्‌में चित्तको रोककर रखना 'भक्ति' है। कोटि-कोटि जन्मके प्रयाससे यही साधना करनी है कि जिससे चित्त संसारकी कामना छोड़कर भगवान्‌में लीन हो जाय। भगवान्‌में जब चित्त सदाके लिये लीन हो जाता है, तब उसका नाम मुक्ति है। चित्तको दूसरोंके चित्तके मलिन संसर्गमें रखनेसे वैसी ही कामना जाग्रत् होती है। जिस चित्तमें जगत्‌के सुखकी इच्छा हो, उसे मलिन जानना चाहिये और जिस चित्तमें भगवान्‌के लिये तड़प हो, उसे निर्मल जानना चाहिये। ऐसा समझकर ही मलिन चित्तवालेसे संसर्ग करे और जितना संसर्ग हो, उसी हिसाबसे चित्तको भगवत्-सरोवरमें स्नान कराकर शुद्ध कर ले, यही सच्ची शुचिता है। इसे 'अस्पर्श्य योग' कहते हैं। मनमें राग-द्वेष स्फुरित हो और कामनाएँ जागें तो तुरंत भगवन्नामके जप, ध्यान आदिके द्वारा भगवत्-जलमें मनको स्नान कराकर शुद्ध कर ले। चित्तको निर्विकार रखना भी

चित्त-स्नान है । इस प्रकार निर्विचार न रहे तो मुखसे भगवान्‌के नामका जप करे और चित्तमें अन्य कोई विचार न आने देकर भगवान्‌का ध्यान करे, इसे भी चित्त-स्नान कहते हैं । जिस प्रकार प्रतिदिन दातुन करना, शौच जाना, स्नान करना और खाना आदि आवश्यक है, उसी प्रकार प्रतिदिन चित्त-स्नान भी आवश्यक है । बहुत सावधान रहनेपर भी चित्तमें मलिनता आ ही जाती है । अतएव प्रतिदिन भगवान्‌का नाम-जप करते हुए संकल्परहित होकर चित्त-स्नान करना चाहिये ।

८८—शरीर (स्थूल) तो जड है, विकारी है, नाशवान् है और आत्मा चेतनस्वरूप, सदा निर्विकार, नित्य और अविनाशी है; फिर यह संसारका गड़बड़झाला किसको लेकर है ?—चित्तको लेकर । चींटीसे लेकर ब्रह्मातक सब शरीरोंके चित्त त्रिगुणमय होते हैं । उनमें किसीमें सत्त्वगुण अधिक, किसीमें रजोगुण अधिक और किसीमें तमोगुण अधिक होता है । पर ऐसा कोई चित्त नहीं जिसमें गुण न हो । इन तीन गुणोंवाले जीवोंके कल्याणके लिये तीन श्रेयके मार्ग शास्त्रोंमें बतलाये गये हैं—कर्ममार्ग, उपासना (भक्ति) मार्ग और ज्ञानमार्ग । जिस प्रकार चित्तमें तीन गुणोंमें एक मुख्य होता है और दो गौण होते हैं, इसी प्रकार प्रत्येक साधकको अपने कल्याणके लिये कर्म, भक्ति और ज्ञानमेंसे एकको मुख्य और दूसरे दोनोंको गौणरूपसे निश्चय करना चाहिये । इन तीनों मार्गोंसे सांसारिक सुख या किसी प्रकारकी कामनाकी प्राप्ति चाहनेवाला मनुष्य संसारके चक्रसे छूट नहीं सकता, परंतु निष्कामभावसे केवल भगवत्-प्राप्तिके लिये इन तीनों मार्गोंका सेवन करनेवाला साधक

प्रभुको प्राप्त करता है। क्रियाका स्वरूप वही रहता है, परंतु जिस आशयसे क्रिया होती है उसी हिसाबसे फल मिलता है। जो चित्त कर्म, उपासना और ज्ञानका सेवन करके जगत्‌के सुखकी इच्छा करता है, उसे उसकी प्राप्ति होती है और जो भगवान्‌की इच्छा करता है, मोक्षकी इच्छा करता है, उसे वह मिलता है। जैसी इच्छा वैसा फल। तब यह प्रश्न होता है कि समान परिश्रमके होते हुए भी फलमें इतना अन्तर है तो सब लोग मोक्षकी या भगवान्‌की इच्छा क्यों नहीं करते? इसका कारण यह है कि जीवको इन्द्रिय-जनित सुख प्रत्यक्ष है, अतएव वह उसकी सहज ही इच्छा करता है। भोग-सुख प्रत्यक्ष है, परंतु वह परिणाममें दुःखरूप है, यह बात जैसे-जैसे विचारद्वारा मनुष्यके समझमें आती है वैसे-ही-वैसे उसके प्रति उसे अरुचि हो जाती है। जबतक इन्द्रियोंके भोगोंमें रुचि है और रस मिलता है, तबतक मनकी इच्छाएँ दूर नहीं होतीं। भोगकी इच्छासे ही चित्त एक शरीर छोड़कर दूसरा धारण करता है, अनेकों कर्मोंको करता है और उनसे दुःख, क्लेश और चिन्ता आदि भोगता है। अपने व्यक्तिगत अनुभव, विचार और सत्सङ्गके बिना चित्त भोगकी इच्छाओंको नहीं छोड़ता। भगवान्‌की शरण लेनेसे, भगवान्‌की भक्ति करनेसे, संतजनोंके सहवाससे और विचारसे भोगनेकी इच्छा धीरे-धीरे शान्त होती है। इसलिये भाई! शान्तिसे, धीरजसे लगे रहो। चित्तमेंसे इच्छामात्रका नाश हुए बिना जन्म-मरणके चक्करसे जीव नहीं छूट सकता।

८९—चित्त जिसकी लालसा करता है उसे पाता है। जगत्‌में दो हैं—एक भोग-पदार्थ और दूसरे भगवान्। चित्त भोगका

चिन्तन करता है तो भोग मिलता है। भगवान्‌का चिन्तन करता है तो भगवान् मिलते हैं। चित्त भोगका या भगवान्‌का चिन्तन क्यों करता है ? इसका उत्तर यह है कि शाश्वत सुखके लिये, अखण्ड आनन्दके लिये। जो सुख या आनन्द अखण्ड नहीं है, बल्कि परिणाममें श्रम, क्लेश, भय, चिन्ता और दुःख प्रदान करता है, उसको उसी प्रकार ठीक-ठीक जान लेनेपर चित्त उसकी इच्छा नहीं करता। जगत्‌के अनेकों संस्कार चित्तको भुलावेमें डालते हैं, उनसे कभी चित्तमें भोगकी इच्छा जाग्रत् होती है, और फिर भोगके प्रति इच्छाका अभाव होकर भगवान्‌की इच्छा जाग उठती है। इस प्रकार चित्तका गड़बड़-घोटाला चला ही करता है। चित्तका यह भ्रम चिरकालसे है, इसलिये यह सहज ही दूर नहीं होता।

चित्त एक बार सोचता है कि भोगकी इच्छा नहीं करनी चाहिये, भोगका चिन्तन भी नहीं करना चाहिये, केवल भगवान्‌की ही चाह करनी चाहिये। इस प्रयत्नमें उसकी परीक्षाएँ होती हैं। उसके सामने अनेकों भोग आकर खड़े हो जाते हैं। उसकी इन्द्रियाँ उनको भोगनेके लिये उसे ललचाती हैं। इस अवस्थामें यदि उसकी बुद्धि परिपक्व नहीं हुई होती है तो दीर्घकालसे हठपूर्वक भोगमेंसे रुचि हटाकर भगवान्‌में रुचि रखनेवाला मन भगवान्‌को छोड़कर भोगमें फँस जाता है। और एक बार भोगमें पड़ा हुआ मन सहज ही नहीं निकलता। तपस्वी विश्वामित्र तथा दूसरे अनेकों तपस्वी, जिन्होंने भोगमात्रका त्याग कर दिया था, सहज ही भोगमें फँस गये। हठपूर्वक भोगसे हटाया हुआ मन भोगके लिये प्रबल आकर्षण होनेपर तुरंत ही उसमें फँस जाता है। अतएव भोगका त्याग करनेके लिये भगवान्‌की शरण लेनी

चाहिये। भगवान्‌की प्राप्ति करनेके लिये और भोगकी इच्छाका त्याग करनेके लिये जो भगवान्‌की शरण लेते हैं, उनकी रक्षा भगवान् स्वयं करते हैं। इसी कारण भगवान्‌का भक्त भोगका सहज ही त्याग करके आसानीसे भगवान्‌को पा लेता है; क्योंकि भक्तका चित्त भोगका त्याग करनेके लिये अपने बलका भरोसा नहीं करता। बल्कि उन भगवान्‌का बल ही उसका आधार होता है कि जिनका बल अपार है और जो भगवान्‌की शरण न लेनेवाले, हठयोगी, विचारशील तथा अन्यान्य साधक चित्तकी भोगेच्छाको छुड़ानेकी चेष्टा करते हैं, वे अपने ही अल्प बलका भरोसा करते हैं और इसी कारण उनकी चेष्टा निष्फल हो जानेकी अधिक सम्भावना होती है। इसलिये मोक्षकी कामना करनेवालोंको चाहिये कि भगवान् जो सर्वत्र व्यापक, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, सबके आधार, दयालु और भक्तवत्सल हैं, उनकी शरण लेकर उनकी ही प्रार्थना करके, उन्हींकी दयाके द्वारा मुक्ति पानेके लिये प्रयत्न करें।

९०—शरीरमें चित्त है। जिसके द्वारा ही जीव सुख-दुःखका अनुभव करता है, चित्त ही इच्छाएँ करता है। क्लेश, भय, चिन्ता, क्रोध, लोभ, द्वेष सबका करनेवाला चित्त ही है। इन सभी चित्तके भावोंका समावेश दोमें होता है—कामना और घबराहट। कामना और घबराहटसे चित्त अपनी जगहको छोड़कर इधर-उधर भटकता है। चित्तका आश्रय आत्मा है। आत्मा नित्य, अविकारी, अविनाशी, अनादि और आनन्दस्वरूप है। यदि चित्त शुद्ध आत्माके आश्रयमें रहे तो उसको शान्त, सुखस्वरूप और आनन्दस्वरूपका अनुभव हो; परंतु उसमें कामना और घबराहट जाग्रत् होती है; इससे वह आत्माके

आश्रयको छोड़कर जगत्की ओर दौड़-धूप करता है और इसीसे अपार दुःखका अनुभव करता है। जबतक आत्माके आश्रयमें रहता है, तबतक अखण्ड सुख रहता है और उसको त्याग करनेसे अपार दुःख होता है। इसलिये यह विचारना चाहिये कि ऐसा होते हुए भी कारण क्या है जो चित्त आत्माका आश्रय त्यागकर जगत्की ओर भटकता है। चित्तमें किसकी कामना जाग्रत् होती है? किससे जाग्रत् होती है? इस चित्तमें संस्कार भरे हैं और वे संस्कार सङ्गसे प्रविष्ट हुए हैं। चित्तको कामना तो सुखकी ही है। परंतु वह सुख किससे किस प्रकार मिलेगा, इसका निर्णय उसमें दूसरोंको देखने, सुनने, जानने और अनुभव करनेसे प्रविष्ट संस्कार करते हैं। स्त्रीसे सुख मिलेगा, धनसे सुख मिलेगा, विद्यासे सुख मिलेगा, भोगसे सुख मिलेगा, यशसे सुख मिलेगा, राज्यसे सुख मिलेगा, ऐश्वर्यसे सुख मिलेगा, स्वर्गसे सुख मिलेगा, लोक-परलोक या उनके आधिपत्यसे सुख मिलेगा, ऐसे अनेकों संस्कार चित्तमें सङ्गके द्वारा घुसे हुए हैं। वे संस्कार चित्तको आत्मासे विमुख करके उन-उन इच्छाओंके लिये प्रयत्न करनेकी प्रेरणा करते हैं। और इच्छा पूरी करनेके लिये आत्मासे दूर होकर उसने जैसे ही इच्छा पूरी की कि तुरंत चित आत्माके आश्रयमें आकर खड़ा हो जाता है; क्योंकि सुख तो आत्मामें ही है। इसी कारण आत्माके आश्रयमें आते ही उसे सुखका अनुभव होता है। इस प्रकार आत्माके आश्रयसे इच्छित वस्तु मिलनेसे उसे सुखका अनुभव हुआ। यह सुख मिला आत्मासे ही, पर इससे चित्तने जाना कि अमुक वस्तुसे मुझे सुख मिला है। यह बिल्कुल भूल है। जिस प्रकार राजाके द्वारा किसी कामके लिये भेजा हुआ नौकर काम पूरा

करके राजाके पास आकर खड़ा हो जाता है, उसी प्रकार चित्त किसी वाञ्छितसे सुख प्राप्त करनेके लिये वाञ्छितको प्राप्त करके आत्माके पास हाजिर हो जाता है।

आत्मासे दूर गया चित्त जबतक आत्मासे विमुख रहता है तबतक श्रम, क्लेश, दुःख, चिन्ता, भय तथा ऐसे अनेकों प्रकारके कहे जानेवाले दुःखोंका अनुभव करता है। जिस प्रकार कुत्ता सूखी हड्डीको चबाते समय अपने ही दाँतोंसे निकले हुए रक्तको हड्डीमेंसे निकला हुआ मानकर सुखी होता है, उसी प्रकार जगत्के भोग्य-पदार्थोंको प्राप्त कर शान्त होनेसे आत्मामें अनुभव होनेवाले सुखको चित्त ऐसा मान लेता है कि यह सुख भोगसे मिला है, अमुक भोगसे सुख मिलेगा। इस प्रकार पूर्वसे ही कल्पना करके जो उसके लिये यत्न करता है, उसीको उस भोगसे सुखका अनुभव होता है, दूसरे-को नहीं। कामनासे चित्त आत्मासे विमुख हो जाता है। ज्ञानीका यह लक्षण है कि सुखके लिये उसका चित्त आत्माको छोड़कर दूसरे किसीका आश्रय नहीं लेता। सुखके लिये कोई प्रयत्न नहीं करता। जिसे अखण्ड आनन्द कहते हैं, वह तो आत्मामें ही है। अतएव उसके लिये वह किसी औरका आश्रय नहीं लेता। इसीलिये अखण्ड आनन्दकी इच्छा करनेवालेको चाहिये कि सुखके लिये कामनामात्रका त्याग कर दे। जो कामनाओंका कभी सेवन नहीं करता, वह नित्य आनन्दित रह सकता है। घबराहट भी चित्तको आत्मासे विमुख करती है अथवा कह सकते हैं कि आत्मासे विमुख चित्त घबराता है और दुखी होता है। अतएव कभी घबराना नहीं चाहिये, परंतु घबराहट किससे होती है ? कामनाके भङ्ग होनेसे। चित्तने

यह कामना कर रक्खी है कि जगत्के प्राणी और पदार्थोंसे सुख होगा और इस कामनाकी पूर्तिमें जब विघ्न पड़ता है, तब उसे घबराहट होती है। अतएव उचित तो यह है कि मनकी समस्त कामनाओंका त्याग करे। यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि 'तो क्या कुछ भी न करे, बिना कुछ किये कैसे बैठा रहा जा सकता है?' उत्तर यह है कि ऐसी बात नहीं है। अपने शरीरकी प्रकृतिके अनुसार सारे काम—अर्थात् जो कर्तव्य-कर्म हों, वे सब करने चाहिये; परन्तु सुखकी आशासे नहीं। यह तो निश्चय कर ही लेना चाहिये कि सुख जगत्के किसी भी पदार्थमें नहीं है। वह तो केवल आत्मामें ही है। वह आत्मा मुझसे अभिन्न है और उसका अनुभव शान्त चित्तसे होता है। तब चित्तको कामना छोड़कर और बिना घबराहटके सुखके लिये नहीं बल्कि कर्तव्यके लिये जो करना हो, उसे करना चाहिये। शर्त एक ही है कि जो कुछ करो बिना घबराये करो। जो कुछ करो बिना सुखकी कामनाके करो। यहाँ प्रश्न हो सकता है कि 'मोक्षके लिये यत्न किया जाय या नहीं? भगवत्प्राप्तिके लिये यत्न किया जाय या नहीं?' इसका उत्तर यह है कि मोक्ष या भगवत्प्राप्तिके लिये यत्न करना तो मानव-जीवनका प्रधान कर्तव्य ही है परंतु यह समझना चाहिये कि सबका आत्मा ही तो भगवान् है और वह नित्य प्राप्त है। अपना सच्चा स्वरूप है। प्रयत्न इतना ही करना कि मन शान्त रहे। चित्त समाहित रहे। क्रिया चाहे जो करे परन्तु शान्त चित्तसे करे, इसका नाम योग है। इस योगके अभ्यासीका लक्ष्य सदा चित्तकी ओर रहता है। जिसका चित्त सदा शान्त है, वह सदा सुखी है। कोई पूछ सकता है कि 'वह क्या भोग भोगता

है—खाता-पीता है ? हाँ, वह सब कुछ करता है पर शान्त चित्तसे। अधीर होकर नहीं, लोलुपता या आसक्तिसे नहीं। सुख प्राप्त करनेकी बुद्धिसे नहीं। भोगमें सुख नहीं है। पर सुखका अनुभव तो आत्मामें शान्त समाहित चित्तसे होता है। ऐसा पक्का निश्चय होना चाहिये। कैसा भी प्रसंग आवे और कुछ भी किया जाय, शर्त एक ही है। कि शान्तचित्तसे किया जाय। आत्माकी छायामें रहकर किया जाय। विकारहीन चित्तके द्वारा किया जाय। मुँहपर विकार न आने पावे, इस प्रकार किया जाय। अनेक जन्मोंके द्वारा प्राप्त की जानेवाली वस्तु यही है।

९१—चित्तको भगवान्‌में जोड़नेका नाम योग है। यहाँ जो कुछ है सब परमात्मासे उत्पन्न हुआ है। परमात्मा सर्वत्र अव्यक्तरूपमें व्यापक, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, अविनाशी, अनादि आदि गुणोंवाले हैं, उनको भजकर मैं उन्हें प्राप्त करूँगा। वे मेरे सर्वस्व हैं, मुझे वे तारेंगे—इस भावनासे चित्तको भगवद्भक्तिसे भगवान्‌में जोड़नेका नाम योग है। चित्त जिसके लिये उत्सुक होता है उसे पाता है। इस प्रकार चित्त भगवान्‌के लिये उत्सुक होकर भगवान्‌में लीन हो जाता है। और आत्मा तो परमात्मस्वरूप यानी भगवत्स्वरूप है ही, इसीलिये कह सकते हैं कि चित्त आत्मामें लीन हो जाता है। इस मार्गके साधकका जब चित्त व्याकुल होता है या उसे कोई इच्छा होती है, तब उसके लिये वह अपने उपास्य भगवान्‌की शरण लेता है। और परमात्मा तो कल्पतरु है। उसका आश्रय लेकर जो इच्छा करता है वह पाता है। अतएव इस प्रकार भक्तियोगवाला अस्त-व्यस्त होकर काम करता हुआ भी आखिर भगवान्‌को प्राप्त करता है। दूसरा

सांख्यका मार्ग है। भक्तियोगमें भाव और श्रद्धा प्रधान होती है, तो सांख्यमें विचार और वैराग्यकी प्रधानता है। जिसमें भाव और श्रद्धाकी अधिकता हो, उसे भक्तिमार्ग ग्रहण करना चाहिये। जिसका वैराग्य अभी कच्चा है और भोगसे रस मिलता हो उसके लिये भक्तिमार्ग उचित है। भक्तिमार्गका फल विचार और वैराग्य है इसलिये सांख्यमार्गवालेको भी जब वह बीचमें कहीं आ पड़े तो, भक्तिका सेवन करते रहना चाहिये। सांख्यमार्गवालेको जान पड़ता है कि यह शरीर मैं नहीं हूँ। यदि मैं शरीर होता तो इसके मुर्दा होनेपर भी इसे व्यक्तित्व मिलता, परन्तु तब तो सभी कहते हैं कि मुर्देको जला डालो, इसमें रहनेवाला चला गया। अतएव यह स्थूल शरीर मैं नहीं हूँ। उसी प्रकार इन्द्रिय, मन और बुद्धि भी मैं नहीं हूँ। भूले हुए मनको मैं उलाहना देता हूँ, बुद्धिको मैं जानता हूँ। मैं जिसको जानता हूँ वह मैं नहीं हूँ। इस प्रकार चित्तसे विचार करते हुए और शास्त्रके अभ्यास तथा सत्सङ्गसे 'मैं कौन हूँ' इसका सूक्ष्म बुद्धिद्वारा विचार करनेपर ज्ञात होता है कि मैं आत्मा हूँ, नित्य हूँ, मुक्त हूँ। परमात्मस्वरूप, शुद्ध चेतनस्वरूप हूँ।

भक्तियोगमें भक्त भगवान्‌के सिवा दूसरे किसीकी भी इच्छा न करे, इससे उसका चित्त निष्काम बनता है। और जो विघ्न या कठिनाई आती है उसको दूर करनेके लिये भगवान्‌से प्रार्थना करता है, अथवा भगवान्‌ने इसमें भी मेरा हित समझा होगा, नहीं तो ये नहीं आते—ऐसा समझकर आनन्दसे उसको सहन करता है। इस प्रकार भक्त कामना और घबराहट दोनोंका त्याग करके चित्तको भगवान्‌में जोड़ देता है। सांख्यवादी

'मैं आत्मा हूँ, असङ्ग हूँ, चित्त नहीं हूँ, मुझे भोग या मोक्षकी इच्छा नहीं, क्योंकि मैं नित्य मुक्त हूँ'—इस ज्ञानके बलसे चित्तमें होनेवाली इच्छाओंका शमन करता है। वह चित्तसे कहता है, 'तू मेरे लिये कोई इच्छा न कर। मैं भोक्ता नहीं हूँ। इसी तरह नित्य-मुक्त होनेके कारण मुझे मोक्षकी भी इच्छा नहीं है।' इस प्रकार कामनाका त्याग करता है और घबराहटका त्याग इस प्रकार करता है कि 'देहका दण्ड देहको भोगना चाहिये। चित्तने जो कुछ पहले किया है उसको भोगे बिना छुटकारा नहीं—हँस करके भोगे या रोकर भोगे, भोगना तो पड़ेगा ही। इसलिये शान्तिसे भोगना चाहिये।' इस प्रकार ज्ञान मार्गवाला कामना और घबराहट दोनोंका त्याग करता है। भक्त और ज्ञानी दोनोंके मन्द और मध्यम प्रारब्ध नष्ट हो जाते हैं और तीव्र प्रारब्ध रहता है। उसका भोग दोनोंको ही करना पड़ता है। इस प्रकार दोनोंके चित्त अनेकों प्रयत्न करते हुए अन्तमें परम पदमें लीन हो जाते हैं। चित्तका सदाके लिये परमात्मामें लीन होनेका नाम मुक्ति है और चित्तका भोगके लिये एक शरीरमेंसे दूसरे शरीरमें भटकनेका नाम जन्म-मरणरूपी संसार है। अब तुम्हें जो रुचे वही मार्ग ग्रहण करो।

९२—यह जो सारी अनन्त सृष्टि दिखलायी दे रही है, सो आत्मा, परमात्मारूपी कल्पवृक्षके नीचे रहकर चित्तके संकल्पसे ही तो उत्पन्न हुई है न! अनेकों जीवोंकी कल्पनासे यह सृष्टि खड़ी है। कोई जीव छोटे हैं, कोई बड़े हैं, कोई ब्रह्मा आदि देवता कहलाता है, तो कोई असुर कहलाता है। सब देहधारी हैं। सबके चित्त हैं। एकाग्रचित्तसे जो संकल्प करता है, वह प्रत्यक्ष होता है (आत्माकी

छायामें रहनेके कारण)। तपके बिना कोई संकल्प नहीं फलता। तप करनेपर जो इच्छा होती है, उसकी पूर्ति होती है। इच्छाके हिसाबसे तप करना पड़ता है। इसीलिये जो इच्छा सहज होती है, वह शीघ्र फलित होती है और कोई कालक्रमसे फलती है। तपका अर्थ है इन्द्रियोंका निग्रह। चित्तको, इन्द्रियोंको जगत्की ओरसे खींचकर परमात्माकी ओर लगानेका नाम 'तप' है। और चित्त जभी परमात्मामें लीन हुआ कि संकल्प फलित हुआ। जिस प्रकार बारूद-खानेमें आगका स्पर्श होते ही वह भड़क उठता है, उसी प्रकार चित्तमें रहनेवाली इच्छा, चित्तके भगवान्‌में लगते ही फलित हो उठती है, परन्तु भोगकी इच्छा चित्तको सहज ही भगवान्‌में लगने नहीं देती। इसलिये भोगकी इच्छाकी अपेक्षा मोक्षकी इच्छा शीघ्र फलती है। परंतु चिरकालके संस्कारके कारण भोगकी इच्छाको निकाल डालना कठिन लगता है। तुम दो ही काम करो—चित्तमें कामना न जागे और चित्त घबराये नहीं। इस अभ्यासको कमर कसकर करो। परंतु ऐसा करते समय चित्त कभी बेकार न बैठने पाये, इसलिये उसको या तो भगवान्‌का नाम जपना सौंपो—बेकार होते ही भगवान्‌का नाम रटे—या मैं आत्मस्वरूप हूँ, इसका चिन्तन करे।

९३—चित्तमें प्राण और वासना दोनों हैं और वह त्रिगुणात्मक है। निष्काम भक्ति करनेपर ज्ञानके उदयके साथ वासना पतली होकर नष्ट हो जाती है। चित्तमें जो प्राण है, उसमें क्रियाशक्ति भरी है। यह क्रियाशक्ति बिना कर्म किये नहीं रह सकती। अतएव भक्तियोग-का साधक हो या ज्ञानमार्गका अभ्यासी हो, दोनोंको ही हाथपर हाथ धरे बैठे रहनेकी इच्छा नहीं करनी चाहिये। अपने प्राणकी

क्रियाशक्तिके अनुसार निष्कामभावसे कर्म करना चाहिये। यह प्राणमें रहनेवाली क्रियाशक्ति भी त्रिगुणात्मिका होती है और सबकी एक-सी नहीं होती। अतएव जिसके प्राणमें जैसी क्रियाशक्ति हो, उसीके अनुसार ही उसे कर्म करना चाहिये; परंतु दूसरोंको देखकर उनके हिसाबसे कर्म नहीं करना चाहिये। गीतामें जो कहा है कि 'परधर्मो भयावहः' उसका यही अभिप्राय है। सूक्ष्म प्राणकी क्रियाशक्तिके मुख्य गुणोंके आधार चार हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। उनके कर्म भी गीतामें कहे गये हैं, उसके अनुसार ही कर्म करना उत्तम है। ये ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र भारतवर्षमें ही हों, ऐसी बात नहीं है। ये तो सारे जगत्‌में हैं। सृष्टि त्रिगुणात्मिका होनेके कारण, जिसमें सत्त्वगुण प्रधान हो उसे ब्राह्मण समझना चाहिये। और इसी प्रकार दूसरे गुणोंके अनुसार दूसरे वर्ण। कर्म किये बिना चित्त नहीं रह सकता। इसी प्रकार प्राणके भीतरकी क्रियाशक्ति जो प्रकृति कहलाती है, उसके विरुद्ध कार्य करनेसे चित्तमें अस्वस्थता रहती है। इस समय जीव प्रकृतिके अनुसार कर्म नहीं करते। इसीसे चित्त व्यग्र, अप्रसन्न और दुखी रहता है। पुस्तकें पढ़कर और उससे ज्ञान प्राप्तकर तुम निष्क्रिय मत बन जाना। भगवान्‌ने कहा है—'मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि'। अर्थात् बिना कामके रहनेमें तुम प्रीति मत करो। शरीरको आग्रहपूर्वक बिना क्रियाके रखनेपर मन संकल्प-विकल्प करता है और उससे अनर्थ होता है। इसलिये तुम अपनी प्रकृतिके अनुसार कर्म करो और भगवान्‌का भजन करो।

९४—गीता किसी सम्प्रदायका ग्रन्थ नहीं है। जगत्‌के मनुष्य-मात्रके ऊपर लागू होनेवाला ग्रन्थ है। इसमें कही हुई बातें स्वाभाविक

हैं । और शरीरमात्रमें रहकर क्रिया करनेवाले चित्तका निदान ठीक-ठीक समझाकर गीताने यह बतलाया है कि चित्तको स्थायी शान्ति कैसे प्राप्त हो । गीताको सदा श्लोक और अर्थके साथ पढ़ना चाहिये, विचारना चाहिये, उसका नियमित पाठ करना चाहिये । पाठ करनेसे मुख्य श्लोक कण्ठस्थ हो जायँगे और उन श्लोकोंका अर्थ जब चित्त फुरसतमें होगा, तब स्फुरित होगा । उसमें कहे हुए साधनके प्रति श्रद्धा होगी और उस साधनके लिये प्रयत्न करनेमें उत्साह होगा, गीतामें बतलाये हुए साधनोंके करनेसे ही सिद्धि मिल सकती है । दूसरे अध्यायमें बतलाये हुए स्थितप्रज्ञके लक्षण, तीसरे अध्यायमें बतलाया हुआ काम-क्रोधके नाश करनेका आग्रह, बारहवें अध्यायमें बतलाये हुए भक्तके लक्षण, तेरहवें अध्यायमें बतलाये हुए ज्ञानके लक्षण, चौदहवें अध्यायमें बतलाये हुए गुणातीतके लक्षण, सोलहवें अध्यायमें बतलाये हुए दैवी-सम्पदाके लक्षण तथा इनके अतिरिक्त सारी गीतामें यत्र-तत्र कहे गये साधनोंको यदि साधक करे तो जरूर शान्ति प्राप्त हो । छठे अध्यायमें बतलाया हुआ चित्त-निरोधका उपाय आग्रहपूर्वक करने योग्य है । साधन किये बिना कुछ नहीं मिलता ।

९५—जगत्‌में जो दिखलायी दे रहे हैं, उन प्राणियों या पदार्थोंसे हमें आनन्द मिलनेवाला नहीं है । इसपर विचार करके सबसे पहले इसे निश्चय कर लेना आवश्यक है । जिस प्रकार लकड़ीके बनाये हुए पक्के आमका रंग और रूप सच्चे आमके-जैसे होता है, परंतु उसमें रस नहीं होता, उसी प्रकार जगत्‌के किसी भी प्राणी-पदार्थमें आनन्द नहीं है । जिस प्रकार रसकी इच्छावालेको बनावटी आमकी जरूरत नहीं होती उसी प्रकार आनन्द—अखण्ड आनन्दकी इच्छा-

वालेको इस जगत्के प्राणी-पदार्थोंके सेवनकी जरूरत नहीं है। फिर चित्त इनकी इच्छा क्यों करता है ? इसलिये करता है कि चित्तको यह भ्रम हो गया है कि इनसे आनन्द मिलेगा, परंतु इनके सेवनसे आनन्द मिलता नहीं। मन और इन्द्रियोंके अनुकूल विषयोंसे मन हर्ष प्राप्त करता है, परंतु वह हर्ष आनन्द नहीं है; क्योंकि वह हर्ष आगे चलकर ग्लानिमें परिणत हो जाता है। यदि भोगोंमें आनन्द होता तो भोग भोगते ही रहनेमें आनन्द-ही-आनन्द मिलता, परंतु वैसा मिलता नहीं। उल्टे जी ऊब जाता है। आनन्द तो आत्मामें है। चित्त उस आत्मा या परमात्मामें डुबकी मारता है तब आनन्दका अनुभव करता है, प्रसन्न होता है और उससे हटनेका मन ही नहीं करता। चित्त दीर्घकालका संस्कार होनेके कारण इस बातको सहज ही समझता नहीं। पर सदाचार, सत्सङ्ग, भक्ति और विचारसे धीरे-धीरे समझता है। चित्त जबतक जगत्के भोगोंके लिये प्रयास करेगा, तबतक कभी उसे शान्ति मिलनेवाली नहीं।

९६—जैसे एक व्यसनी यद्यपि जानता है कि अमुक व्यसनसे उसकी हानि होती है। अतएव उसका त्याग करना चाहिये तथापि वह उसका त्याग नहीं कर सकता; क्योंकि उसे बहुत दिनोंकी आदत पड़ी होती है। उसी प्रकार मनने भोगोंमें रस मान लिया है और उसकी आदत पड़ गयी है। इसीलिये भोगोंमें आनन्द नहीं बल्कि दुःख है—यह जानकर भी वह उनको त्याग नहीं सकता। आदतको निकाल डालनेके लिये सत्सङ्ग, विचार, भगवान्की अनन्य शरण और उद्यमकी विशेष आवश्यकता है। और इनका सेवन करके तथा धीरज रखनेसे धीरे-धीरे उनका त्याग हो सकता है।

९७—कुछ लोग प्राणायाम सीखने और करनेके लिये कहते हैं और दूसरे सब जप, ध्यान, पूजा-पाठ आदि साधनोंको गौण बतलाते हैं। कोई कान बंद करके नाद सुनने और उसका अभ्यास करनेके लिये कहते हैं। कोई आँखें बंद करके अँधेरेमें जो कुछ दीख पड़े, उसमें वृत्ति लगानेके लिये कहते हैं। इसके तथा इसी प्रकारके अनेकों उपायोंसे अनेक दृश्य दिखलायी देते हैं। अनेकों राग तथा बाजे सुन पड़ते हैं। तदनन्तर बहुत-सी दूसरी सिद्धियाँ आती हैं—ऐसा कहा जाता है और यह बात भी सच्ची है। हम ऐसे लोगोंसे पूछते हैं कि इन सबसे क्या लाभ है?—संसारमें यश फैले, सम्पत्ति मिले। इससे विशेष लाभ क्या हुआ? क्या मन मारा गया? भगवान् मिले?—उत्तर मिलता है—नहीं। ये सारे रास्ते भयङ्कर हैं। सुन लेना सहज है, शुरू करना सहज है, परन्तु ठेठ पहुँचना कठिन है। इन सब साधनोंको करने जाकर कितने ही लोग तो रोगी हो जाते हैं, कई मर जाते हैं और कितने ही पागल हो जाते हैं। इसलिये आजकलके युगमें भूलकर भी ऐसे मार्ग नहीं ग्रहण करने चाहिये। ईश्वरके नामका जप, इष्टदेवकी प्रेमसे पूजा, उनका ध्यान, पाठ, सदाचार, सत्सङ्ग और हरिकथा तथा अपना उद्यम करते रहनेपर सहज ही मन शान्त हो जायगा तथा भगवान्‌की प्राप्ति हो जायगी। अतएव लबार, दम्भी, ठग, धूर्तोंके वाग्-विलासके जालमें न पड़कर सर्वभावसे भगवान्‌की शरण लेनी चाहिये। भगवान् तुम्हारे हैं, सबके हैं। भगवान् सर्वसमर्थ हैं। भगवान् तार देंगे। भगवान्‌में श्रद्धा रक्खो और सदाचार तथा सत्सङ्गको कभी न भूलो।

९८—बुढ़ापेमें कुछ नहीं होता। हो सके तो अभीसे करना शुरू कर दो। उम्रके बढ़नेके साथ शरीरकी, मनकी तथा इन्द्रियोंकी शक्ति घट जाती है। जठराग्नि मन्द हो जाती है। कानोंसे कम सुनायी देता है। आँखोंसे कम सूझता है। बहुत देरतक बैठा नहीं रहा जाता। माला फेरनेमें हाथ दुखता है। उठा-बैठा नहीं जाता। शरीरमें अनेक प्रकारके रोग हो जाते हैं। इसलिये अभीसे जबतक कि शरीरमें, इन्द्रियोंमें और मनमें शक्ति, स्फूर्ति और उत्साह भरा है, तबतक भगवान्‌के नामका जप खूब करो, व्रत-नियम करनेका यही समय है। परोपकार, लोकसेवा तथा प्राणियोंके उपयोगी कार्य करनेका यही समय है। तीर्थयात्रा करनेका यही समय है। मन और इन्द्रियोंके संयमकी साधनाका यही समय है। भगवान्‌की भक्ति और सत्सङ्गका यही समय है। सद्गुणोंके धारण करने और दृढ़ करनेका यही समय है। ज्ञान प्राप्त करनेका यही समय है। सब प्रकारके सुकृतोंके करनेका यही समय है। परलोकके पाथेय तैयार कर लेनेका यही समय है। मुक्तिके लिये साधना करनेका यही समय है। ऐसा समय आयेगा जब आँखें अंधी हो जायँगी, कान बहरे हो जायँगे, घरमें कोई पूछेगा नहीं, कोई कहा नहीं करेगा, भूख बहुत लगेगी पर खाया हुआ पचेगा नहीं, कोई बात करना नहीं चाहेगा, कोई पास नहीं बैठेगा, तुमसे कुछ होगा नहीं और दूसरे कहा करेंगे नहीं, कोई गिनेगा नहीं, चिढ़ावेंगे, दिल्लगी उड़ायेंगे। परिवारके लोग तिरस्कार करेंगे, पैसा पास होगा नहीं। दान-पुण्य होगा नहीं, तप-तीर्थ होगा नहीं, मरनेके समय मल-मूत्रका ठिकाना रहेगा नहीं, होश रहेगा नहीं, सन्निपात हो जायगा, न बोलने योग्य बातें मुँहसे निकलेंगी, कुछ पहचानमें

नहीं आयेगा, मन बेचैन हो उठेगा, कण्ठमें कफकी घरघराहट होने लगेगी। इस समय सशक्त अवस्थामें यदि भगवान्की आराधना की हुई होगी, सुकृत किये हुए होंगे, भगवान्को अपनाकर भगवान्की अनन्य शरण ग्रहण की हुई होगी, तो चौदहों लोकोंके नाथ भगवान् आकर सामने खड़े हो जायँगे और बेहोशीकी हालतमें भी भगवान् अपने जनकी बाँह पकड़कर अपने धाममें ले जायँगे। इसलिये भाई! तुम अपनी सशक्त अवस्थामें ऐसी कमर बाँधो कि (१) भगवान्का नाम-स्मरण खूब करो, (२) जब मौका लगे तभी परोपकार करते रहो, दूसरोंका भला करते चलो, (३) कभी किसीकी बुराई मत करो और (४) सगे-सम्बन्धी तथा इस संसार एवं संसारके भोगोंमेंसे मनको हटाकर उसे भगवान्में जोड़ते रहो। आये अवसरमें चूक जाओगे तो पछताओगे। ऐसा समय फिर नहीं आनेका। उठो। जागते हो या सो रहे हो? कल्याणके मार्गपर कमर कसकर डट जाओ!

९९—नित्य गीताका पाठ करो और नियमित पाठ करो। बिना किसी आडम्बरके सीधी और सरल भाषामें जीव परमपदको किस प्रकारसे प्राप्त कर सकता है—इसका सादा और सहज उपाय गीतामें बताया गया है। साधन करते समय क्यों अड़चन आती है, क्या अड़चन आती है, उसको किस प्रकार पार किया जाता है—ये सारी बातें बतायी गयी हैं। पहले क्या करना चाहिये और बादको क्या करना चाहिये—यह सब गीतामें बताया गया है। यदि तुम भक्तिके मार्गमें हो तो बारहवें अध्यायमें भक्तके लक्षणके आठ श्लोक हैं, उनमें बताये हुए लक्षणोंको अपनेमें उतारनेके लिये अभ्यास करो। और जबतक वे लक्षण तुममें न

आवें तबतक मैं भक्त हूँ, पार पा गया हूँ—इस प्रकार अभिमान करके साधनमें ढिलाई न आने दो। यदि तुम ज्ञानके मार्गमें हो तो तेरहवें अध्यायमें ज्ञानके बीस लक्षण कहे गये हैं, उन्हें अपनेमें उतार लो। और वे जबतक पूरे-पूरे न उतर जायँ तबतक अपने ज्ञानीपनका झूठा ढोंग न रचाओ। तुम्हें योगमार्गमें जाना हो तो छठे अध्यायमें कहे गये साधनके अनुसार मनको विचारशून्य बनानेका अभ्यास करो। दूसरे अध्यायमें कहे गये स्थितप्रज्ञके लक्षण और चौदहवें अध्यायमें बताये गये गुणातीतके लक्षण—यदि उस साधन-पथमें हो तो, अपनेमें उतारो। इन सबका एक ही ध्येय है कि चित्तको जगत्‌से खींचकर भगवान्‌में जोड़ो, उसमें लीन कर दो। जिस प्रकार नदी सागरमें मिलकर सागररूप हो जाती है, उसी प्रकार चित्तको जगत्‌से खींचकर परमात्मामें मिलाकर एक कर देना चाहिये। ऐसा किये बिना छुटकारा नहीं है, आज करो या लाखों वर्षोंमें करो। जबतक यह नहीं होता तबतक दुःख मिटनेवाला नहीं। भगवान्‌की भक्तिके बिना यह काम बननेवाला नहीं है। भगवान् मूर्तिमें ही हैं, ऐसी बात नहीं। वैकुण्ठमें ही हैं, ऐसा भी नहीं। वह जैसे मूर्तिमें हैं, वैकुण्ठमें हैं, वैसे ही सबके शरीरमें हैं। अतएव किसीका अपमान नहीं करना चाहिये। कड़वी वाणी मत बोलो, किसीको ठगो मत और यथाशक्ति दान-सम्मानसे सबकी पूजा करो। सबमें भगवान् हैं और यह सब भगवान्‌में है—यह सच्ची और अन्तिम साधना है। मूर्तिपूजा तो प्रारम्भिक रीति है। सबमें और सर्वत्र भगवान् हैं, इस प्रकार देखे और समझे बिना, लाखों उपायोंसे भी पूर्ण शान्ति नहीं मिल सकती। तुम जगत्‌की चिन्ता छोड़ दो।

जगत्को तो भगवान् चलाता है और सब कुछ निश्चित है, हजारों और लाखों वर्षोंका भविष्य निश्चित है । तुम किसलिये चिन्ता, भय, उद्वेग और हाय-हाय कर रहे हो ? चित्तको नित्य शान्त रक्खो । चित्तको नित्य प्रसन्न रक्खो । एक ही दृष्टिकोण रक्खो कि तुम्हारा चित्त शान्त और प्रसन्न है । निर्मल चित्तमें, शान्त चित्तमें, प्रसन्न चित्तमें भगवान्का दर्शन होता है ।

१००—फलकी इच्छा और कर्मकी आसक्तिका त्याग—इन दोनों-के लिये गीतामें विशेष आग्रह किया गया है । कर्म किये बिना मनुष्य रह नहीं सकता, इसलिये कर्म तो करना ही है, कर्म अर्थात् प्रकृतिके अनुसार नियत किया हुआ कर्म, धर्म-कर्म, परोपकार-कर्म आदि । कर्मफलकी इच्छाका त्याग और आसक्तिरहित होकर किया हुआ कर्म बन्धनकारक नहीं होता । उलटे मोक्षप्रद बनता है । इसलिये जितने बन सकें उतने जीवनमें इस प्रकारके कर्म किये जाओ । ऐसे कर्ममें बहुत बल है । कर्म करके मान-प्रतिष्ठा और परलोकके सुखकी इच्छा करना अथवा उनकी प्राप्तिसे प्रसन्न होना—ये सब इच्छापूर्वक कर्म करनेके लक्षण हैं । फलकी इच्छाका और आसक्तिका त्याग हो चुका है या नहीं, इसे बहुत सूक्ष्मतासे विचार करके देखना चाहिये और भूल हो तो उसे सुधार लेना चाहिये ।

१०१—तुम्हें भगवान्ने धन दिया है ? दिया है तो दान-पुण्य करो । लोकहितके काम करो । धनको परोपकारके लिये व्यय करने लगो । धन तो नित्य पूछता है कि 'मैं जाऊँ ?' तुमने उसे जकड़ रक्खा है । वह जानेके लिये व्याकुल हो रहा है । तुम खर्च नहीं

करोगे तो वह नजर बचाकर बाहर निकल जायगा। वह किसीके यहाँ स्थिर नहीं रहा, तुम्हारे यहाँ भी रहनेवाला नहीं। तुम न खर्च करोगे तो तुम्हारे वारिस उस धनको शराब, जुआ, सट्टा, दुराचार और ऐशो-आराममें खर्च कर देंगे। इससे तुम्हें क्या फल मिलेगा, यह तुम विचार कर देखो। वैद्य-डाक्टर और वहममें जायगा। चोर-डाकुओं और आगकी भेंट होगा। व्यापार-धंधेमें घाटा लगेगा और चला जायगा। धन तो आता है जानेके लिये ही। इसलिये तुम अपने हाथोंसे उसे अच्छे कामोंमें खर्च करते रहो। यों करनेसे तुम्हारे पाप दूर होंगे। परिवारके लोगोंमें अच्छे संस्कार पड़ेंगे। तुम्हारे यहाँ सज्जनोंका आना-जाना होगा और सबमें अच्छे संस्कार पड़ेंगे। कुछ-न-कुछ निमित्त खड़ा करके धन सत्कर्ममें खर्च करते रहोगे तो तुमको और तुम्हारे परिवारको सुख होगा। धन खर्च करना भगवान्‌के लिये। कीर्तिके लिये न खर्च करना। कामनाके लिये न खर्च करना! एक ही क्रिया भावनाके भेदसे बिल्कुल दूसरा फल प्रदान करती है। कीर्तिके लिये खर्च किया हुआ धन कीर्ति दे सकता है और न भी दे सकता है, परन्तु वही धन भगवत्-प्रीत्यर्थ शुद्धभावसे खर्च किया जाय तो उससे भगवान् अवश्य प्रसन्न होते हैं। धन बरता दिया जाता है तो वह सुख देता है और गाड़कर रक्खा जाता है तो वह दुःख, क्लेश, कलह, अनाचार और मृत्युको उत्पन्न कर अन्तमें स्वयं भी चला जाता है! इसलिये धनका प्रतिदिन किसी-न-किसी रूपसे सदुपयोग करते रहो।

१०२—कर्ममात्रका कर्ता तो चित्त ही है। उसमें पूर्वजन्मके या इस जन्मके जो संस्कार होते हैं, उन्हींके अनुसार वह कर्म करता

है । पड़े हुए संस्कार फलित होते हैं । अच्छे सङ्गसे अच्छा संस्कार पड़ता है । बुरे सङ्गसे बुरा संस्कार पड़ता है । इसलिये सज्जनके सङ्गमें रहना चाहिये, दुर्जनके सङ्गमें कभी नहीं जाना चाहिये । दूसरोंको सुख मिले, जिसका ऐसा आचार-विचार हो, वह सज्जन है । दूसरोंको दुःख मिले, जिसका ऐसा आचार-विचार हो, वह दुर्जन है । इस प्रकार समझकर सङ्ग करना चाहिये ।

१०३—तुम्हें सारे जगत्के शास्त्रोंका मूल बतलाता हूँ । आत्मा तो सबका चेतनस्वरूप है, नित्य है । अजर, अमर है । इसमें तो सब एकमत हैं । भेद इस प्रकार है—कोई कहता है कि जितनी देह हैं उतनी ही आत्मा हैं । कुछ लोग कहते हैं कि जितनी देह हैं, उतने चित्त तो हैं पर आत्मा जो परमात्मा-स्वरूप है, वह तो सबमें एक ही है । यह झगड़ा है नन्हा-सा, पर हो गया है बड़ा । इसमें तुम मत पड़ो । एक-एक कदम चलकर मंजिल काटो । पीछे जो होगा सो देख लिया जायगा । जिसने आँखोंसे नहीं देखा, वह अनुमान करके कटता-मरता है । जिसने नजरसे देखा उसने पूरा नहीं देखा । इसलिये वह अपने देखे हुएकी बात कहता है और कहता है कि दूसरा है ही नहीं । जो विवाद करता है, वह अपूर्ण है । परमपदको पानेवाला झगड़ता नहीं, पर झगड़नेवालेको मार्ग दिखलाता है, जो जितना जानता है, उसीके अनुसार करता है, तो समझना चाहिये कि वह रास्ता काट रहा है । हम शरीर नहीं हैं, यह बात तो निश्चित है न ? हम बुद्धि नहीं हैं, यह बात भी तो निश्चित है । अब, आत्मा एक है या अनेक—इसे पीछे देखा जायगा । परन्तु जब शरीर, मन और बुद्धि हम नहीं हैं, तब उनके पीछे क्यों

तने हुए जायँ । चित्त, मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ और शरीरको शान्त रक्खो, इनका निग्रह करो, इससे चित्त शान्त होगा । सारे विकारोंका शमन हो जायगा । सारी इच्छाएँ शान्त हो जायँगी, फिर पीछे जो होगा अपने-आप माऌम हो जायगा । इच्छाओंका शमन न होनेसे मन और इन्द्रियाँ भोगकी ओर देखेंगी । मन भोग और वासनाके अधीन हो जायगा तो फिर जानकारीका क्या फल होगा ? ऐसे लोगोंके लिये तो आत्मा और परमात्मा एक हैं या भिन्न, आत्मा एक है या अनेक, ये सारी बातें सन्निपातके बकवादके समान हैं ।

मनके शान्त और भोग-वासनासे रहित हुए बिना अध्यात्मकी बातें करनेवाला केवल जीभका रस लेता है । जो पहले करना चाहिये उसे नहीं करता है । अपने गाँवसे दो सौ मील दूर दूसरे गाँवमें जानेवाला मनुष्य यदि एक पग भी आगे नहीं रखता और उस गाँवके वर्णनमें दूसरेके साथ झगड़ता रहता है, तो वह उस गाँवके रास्तेमें गये बिना वहाँ कैसे पहुँचेगा । और जो रास्तेपर चलकर उस गाँवमें पहुँच गया और अपनी आँखों गाँवको देख लिया, उसे फिर गाँवके वर्णनके लिये दूसरेके साथ विवाद ही क्यों करना पड़ेगा । भाई ! रास्ता पकड़ो, काममें लग जाओ । क्या करना है, इसे एक वाक्यमें बताता हूँ—ऐसा उपाय करो कि जिससे चित्त सदा शान्त—क्षोभरहित रहे । तुम्हारा, दूसरेका और सबका । तुम दूसरेके प्रति ऐसा कुछ भी न करो, जिससे उसके चित्तमें क्षोभ हो । इसी प्रकार दूसरे जो कुछ करें, उससे अपने चित्तको क्षुब्ध न होने दो । दूसरोंके द्वारा जो अपने चित्तको क्षुब्ध नहीं होने देता और सदा शान्त चित्तसे प्राप्त कर्मको किये जाता है, वह अजेय

योद्धा है । और जिसका चित्त दूसरोंसे क्षोभ पाता है, वह हारा हुआ है । जिसका चित्त दूसरोंसे पराभव पाता है, वह परतन्त्र है । जिसका चित्त दूसरोंसे पराभव नहीं पाता और निर्विकार तथा क्षोभरहित रहता है, वह स्वतन्त्र और सदा मुक्त है । पराभव पाया हुआ चित्त दूसरेके अधीन हो जाता है, उसीका नाम परतन्त्रता है । इसीको कहते हैं—'पराधीन सपने सुख नाहीं' । और अनेक विकारोंके प्राप्त होनेपर भी जिसका चित्त शान्त, समरस, क्षोभरहित, गम्भीर और निर्विकार रहता है, वही स्वतन्त्र है । वही सदा मुक्त है । कर्म, उपासना और ज्ञानका यही फल है । जिसका चित्त सदा निर्विकार और निर्विचार रहता है, वह धन्य है । सारे सद्गुणोंकी व्याख्या इसीमेंसे होती है । इसे सीखो, इसीके लिये प्रयत्न करो । इसकी प्राप्ति ही जीवनमुक्ति है । वही परम सिद्धि, वही परमपदकी प्राप्ति है । यह कैसे मिलेगी ? कर्तव्यके पालनसे, परमात्माकी भक्तिसे, सत्सङ्गसे, सत्य और सदाचारके सेवनसे तथा इच्छामात्रका त्याग करनेसे । धीरे-धीरे जैसे मंजिल कटेगी वैसे ही शान्ति आती जायगी । जैसे-जैसे रास्ता कटेगा वैसे-वैसे ध्येय समीप आता जायगा । वह अन्तमें एक दिन ध्येयको पा लेगा । धीरजसे लगे रहना चाहिये ।

१०४—फोटो खिंचवाते समय ठीक स्वस्थ होकर फोटोके काँचके सामने देखना पड़ता है । तभी फोटो ठीक आता है । हिलने-डुलनेसे फोटो ठीक नहीं आता । उसी प्रकार तुम एकाग्र चित्तसे जो कुछ देखोगे, जो सुनोगे, जो जानोगे, जो अनुभव करोगे, उसका संस्कार चित्तमें पड़ेगा । और जैसा संस्कार पड़ेगा, वैसी कामना जाग्रत् होगी । और उस कामनाको पोषण मिलनेपर वह फूले-फलेगा

और बड़ी हो जायगी, तब वही मनको सुख-दुःख देनेवाली हो जायगी। इसलिये तुम जो कुछ सुनो, समझो, अनुभव करो, देखो—पहले विचार करके जान लो कि क्या वह तुम्हारे कल्याणके लिये ठीक है। जगत्‌में श्रेय और प्रेय—ये दो प्रकारके पदार्थ हैं। जो मन और इन्द्रियोंको तात्कालिक हर्ष प्रदान करे और परिणाममें दुःखप्रद हो, वह प्रेय कहलाता है। उसके संस्कार चित्तमें मत पड़ने दो। जिससे चित्तमें शान्ति हो, जो आत्माका कल्याण साधनेवाला हो और परिणाममें सुख, शान्ति और आनन्द प्रदान करनेवाला हो वह श्रेय कहलाता है। उसके संस्कार चित्तपर पड़ने दो।

दूसरी बात यह है कि चित्तमें जिसका संस्कार पड़ेगा, उसकी कामना जाग्रत् होगी। ईश्वरकृत सृष्टि जैसे नदी, सरोवर, जंगल, पहाड़ आदिके दृश्य, आकाश, सागर, पेड़-पौधे आदिको देखनेसे उनके संस्कार मनको शान्त करते हैं और उसे ईश्वरकी ओर ले जाते हैं। इसलिये इनके संसर्गमें रहना चाहिये, और इसीसे साधु-संत इनका आश्रय लेते हैं। यदि चित्तको सांसारिक जीवोंकी सृष्टिके सम्पर्कमें आने दिया जायगा तो उसकी कामना जागेगी और वह दुःखमें ढकेल देगी। कल्याणकी इच्छा रखनेवालोंको चाहिये कि वे प्रपञ्चकी सृष्टिको जानी-न-जानी, देखी-न-देखी, सुनी-न-सुनी कर दें और सत्सङ्ग, हरिकथा एवं भगवान्‌की मूर्तिका दर्शन रस लेते हुए करें। जैसा संग करोगे वैसे बनोगे। इसलिये सङ्ग देख-विचारकर करो। इसमें कल्याणकी इच्छा रखनेवालोंको चाहिये कि स्त्रीका सङ्ग तथा स्त्रीके सङ्गीका सङ्ग न करें। उसमें भी परस्त्रीका

सङ्ग तो कभी भी न करें। कभी असावधान नहीं रहे। मनके भरोसेपर कभी नहीं रहे।

कबीरदासजी कहते हैं—

जहाँ जलाई सुंदरी तहँ जिन जाहु कबीर।
उड़ि भभूत अंगन लगे सूना करे सरीर॥

जब जलायी गयी स्त्रीकी राखकी यह दशा है, तब रसपूर्वक स्त्रीसंसर्गमें रहनेवाले मनकी क्या दशा होगी? इसलिये व्यवहारमें कभी परस्त्रीके सम्पर्कमें आना पड़े तो उसे मा, बहिन, लड़की—जैसे शब्दोंद्वारा पुकारकर यथायोग्य व्यवहार करना चाहिये।

१०५—सारे ब्रह्माण्डमें परमात्मा एक ही है। वेष चाहे जो हो, पर अंदर तो एक ही है। स्थूल शरीर और चित्त भले ही जुदे-जुदे हों; परन्तु उन सबके आधार तो सबके परमात्मा एक ही हैं। तुम चाहे जिस मूर्तिका पूजन-भजन करो, उसका रूप-शृङ्गार भले ही दूसरा हो, नाम भले ही दूसरा हो, पर सबमें परमात्मा तो एक ही हैं और मूर्तिके रूपमें फल प्रदान करनेवाला वही चेतन परमात्मा है। सनातनधर्मका यही बड़ा रहस्य है। हनूमान्, भैरव, देवी, महादेव, विष्णु, राम, कृष्ण, गणपति अथवा चाहे जिस नामके देवता हों, उनकी मूर्तियाँ जुदी-जुदी होते हुए भी सबमें व्याप्त रहनेवाला परमात्मा एक ही है। अब चाहे तुम उस मूर्तिवाले देवताको भजो, चाहे मूर्तिके भीतर विराजमान उस परमात्माको भजो, जो सर्वशक्तिमान्, निरञ्जन, निराकार तथा सर्वव्यापक है, उसको भजोगे तो उसको पाओगे, नहीं तो मूर्तिके उस देवताको प्राप्त करोगे

जो अल्पशक्तिमान् है । जिसको भजोगे, उसीको पाओगे । पोस्ट-आफिसमें पोस्टमास्टरको रुपये देकर पोस्टआफिसकी सही तथा मुहर लगा लोगे तो वे रुपये पोस्टआफिसमें तुम्हारे जमा होंगे और पोस्टआफिस उनकी देनदार होगी, परन्तु यदि वही रुपये उसी पोस्टमास्टरको देकर तुम उसीकी व्यक्तिगत सही लोगे तो उन रुपयोंका देनदार वह मनुष्य होगा, जो अन्य है । उपासनामें मेहनत समान होती है, परन्तु भावके भेदसे फलमें बड़ा भेद हो जाता है । इसलिये जो ठीक जान पड़े वही करो । विभिन्न देवोंको ग्रन्थोंमें जो भगवान् कहा गया है, उनका आशय यह है कि चेतन-सत्ता तो सबमें एक ही है । सबमें सत्ता तो परमात्माकी ही है । जिस प्रकार राज्यमें सिपाहीसे लेकर मन्त्रीतक सभी परिमित सत्तावाले होते हैं और वह सत्ता भी राजाकी ही सत्तासे होती है और राजा सर्वोपरि सत्तावाला होता है । उसी प्रकार देव, मनुष्य, अनेकों जीव अल्प सत्तावाले हैं और वह भी परम कृपालु परमात्माकी सत्तासे । सत्ता तो एक ही है और वह परमात्माकी सत्ता है । तब दूसरे बखेड़ोंको छोड़कर उसीको भजो न ? एक राजाकी सेवा करनेवाला दूसरे राज्याधिकारियोंका तिरस्कार नहीं करता, उनके मानकी रक्षा करते हुए काम लेता है । उसी प्रकार तुम भी परम परमात्माका भजन करते हुए अन्य देवोंका तिरस्कार न करके उनका यथायोग्य सत्कार करो । उनका यथायोग्य पूजन-अर्चन करो, और ऐसा करते हुए यह न भूलो कि उनमें परमात्मा ही विराजता है और उनकी पूजा करते हुए तुम परमात्माकी ही पूजा करते हो, ऐसा मानो, जो सर्वथा सत्य है । सच्ची बात तो यह है कि एक ही परमात्माके अनेक वेष हैं । पर

वेष बदलनेसे व्यक्ति थोड़े ही बदलता है? राजा यदि गरीबका वेष धारण करे तो अनजान आदमी उसके प्रति गरीब-जैसा व्यवहार करेगा, पर जो जानकार होगा वह तो भीतरसे राजाके प्रति-जैसा, और बाहरसे गरीबके प्रति-जैसा व्यवहार करेगा; क्योंकि यदि जानकार बाहरसे राजा-जैसा व्यवहार करेगा तो वह वेषको लजायेगा और सचमुच गरीबके प्रति-जैसा व्यवहार करेगा तो मूर्ख कहलायेगा। वेषीको पहचानकर वेषके अनुसार सभ्य व्यवहार करनेमें जो सदा सावधान हो, उसीका नाम जीवन्मुक्त है। इस प्रकारके व्यवहारका नाम 'योगः कर्मसु कौशलम्' है। यह कठिन है, पर निष्काम कर्मसे, निष्काम भक्तिसे और सत्सङ्गसे समयपर प्राप्त होता है।

१०६—तुमने चौपड़ देखी है? चार आदमी खेलनेवाले होते हैं। दाँव रखने और पासा पड़नेपर उसीके अनुसार गोटी चलानी पड़ती है। पासा फेंकता है खेलनेवाला; पर कितना पड़ेगा, यह उसके हाथकी बात नहीं। वह जो डालना चाहता है सो नहीं पड़ता और वह नहीं जीतता। चौपड़में चौबीस खाने एक ओर होते हैं। वैसे ही चारों ओर चलकर जीतना पड़ता है। यह सब बहुत कठिन है। खेलाड़ी ऊब जाता है तो भी उसका मन खेलको छोड़ना नहीं चाहता। इस खेलको देखनेवालेका मन इसे खेलनेके लिये ललचाता है, फिर खेलनेवाला इस खेलसे किस प्रकार छूटे? यदि वह छोड़कर खड़ा होता है तो दूसरे तीन बलपूर्वक उसे बैठा लेते हैं, उठने नहीं देते। इसी प्रकार जीवरूपी खिलाड़ी चौबीस तत्त्वके इस संसारमें चार प्रकारके जीवोंकी खानोंमें भ्रमण करता रहता है, छूटता नहीं; जीतता नहीं। छोड़ना चाहता है तो सगे-

सम्बन्धी, स्नेहीरूपी दूसरे खिलाड़ी छूटने नहीं देते। सच तो यह है कि उसके पेटमें ही खेलके लिये रस रहता है। खेलमें रस न रहे, खेल दुःखरूप और नीरस लगे, पूरी तौरसे ऊब जाय और उठ खड़ा हो—इसका नाम है वैराग्य, इसका नाम है त्याग। जीव अपनी इच्छासे ही इस संसारके खेलको लिये बैठा है और चारों खानोंमें भटका करता है। इच्छाका त्याग किये बिना कोटि उपाय करनेसे मुक्ति नहीं होती। इच्छाका त्याग कब हो? जब वस्तु नीरस लगे। वस्तु नीरस कब लगे? जब वस्तुका सच्चा स्वरूप समझमें आवे, अर्थात् जब ज्ञान हो। ज्ञान कब हो? जब चित्त निर्मल हो, तब वस्तुका सच्चा स्वरूप समझमें आये। चित्त निर्मल कब हो? निष्काम कर्म, निष्काम भक्ति और सत्सङ्गका सेवन हो तब। जप, तप, दान, पुण्य, तीर्थ-सेवन—इनका निष्काम भावसे सेवन करनेपर सबका एक ही फल मिलता है और वह है चित्तशुद्धि। चित्त-शुद्धिका फल है—विचार। विचारका फल है—ज्ञान। ज्ञानका फल है–इच्छामात्रका त्याग। भोगकी इच्छामात्रका त्याग ही मुक्तिका सच्चा साधन है। जबतक जगत्के भोगोंमें रुचि है, तबतक मुक्ति दूर है, तबतक अज्ञान है–ऐसा समझना चाहिये। केवल वाद-विवाद और बातोंसे मोक्ष नहीं मिलता। झूठ, क्रोध और भोगेच्छाका त्याग करनेके लिये धीरजसे अभ्यास करो। रोज लगनसे अभ्यास करो। तुरंत फल नहीं मिलेगा, मेहनत करते-करते फल मिलेगा। सत्य और प्रिय वाणी बोलनेका अभ्यास करो। अनन्यभावसे भगवान्‌की शरण लो! भगवान्‌की भक्ति करो! भगवान् कहो, ब्रह्म कहो, परमात्मा कहो–चाहे जो नाम कहो—

सत्, चित् और आनन्दस्वरूप एक ही वस्तु है। चित्त जिसको चाहेगा, उसे पायेगा। भोगोंके लिये उत्सुक होगा तो जन्म-मरणके द्वारा भोगोंको पायेगा। भगवान्‌के लिये उत्सुक होगा तो भगवान्‌को पायेगा। वस्तु यह है, जो ठीक लगे वह करो। बहुत-से ग्रन्थोंका सार यही है, शास्त्रोंका निचोड़ यही है। साधु-संतोंके अनुभव और उपदेशका सार यही है। करनेके लिये उतर पड़ो और भगवान्‌की कृपासे पार उतरो।

१०७—तुम जगत्‌की ओर देखो। जिधर देखोगे उधर आकाश दीख पड़ेगा। इसलिये यह जो दृश्य-जगत् दिखलायी पड़ता है, वह सब आकाशमें है; क्योंकि जगत्‌के पदार्थोंके चारों ओर और भीतर भी आकाश ही है। आकाशसे यह जगत् उत्पन्न होता है, आकाशमें रहता है और आकाशमें लय भी होता है। आकाशसे बाहर कहीं नहीं जाता। आकाशसे बाहर कोई जगह ही नहीं है। जहाँ कुछ दूसरा है वहीं आकाश है। और आकाशमें विभाग नहीं, आकाश अखण्ड है। पर यह आकाश तो जड है, आकाशसे परे परमात्मा है। जिससे परे कोई नहीं, वह परमात्मा है। जो सर्वत्र व्यापक, सबका नियन्ता है, सब कुछ जिसमेंसे उत्पन्न होता है, जिसके द्वारा और जिसमें सब रहते हैं और जिसमें लीन हो जाते हैं, जिसका आदि, मध्य और अन्त नहीं है, वह परमात्मा है। उस परमात्मासे ही आकाशके साथ यह सारा ब्रह्माण्ड उत्पन्न होता है, अभिव्यक्त होता है और लयको प्राप्त होता है। वह परमात्मा सर्वत्र है, सबमें है। अपने शरीरमें है, सबके शरीरमें है, सबके

शरीरके बाहर और अंदर है। सारी विद्या, सारी शक्ति और स
शास्त्र उसीमें हैं। इन्द्रियोंकी शक्ति, मनकी शक्ति, बुद्धिकी शक्ति
शरीरकी शक्ति, पदार्थ और उनकी विविध शक्तियाँ—ये स
उसीसे हैं। परमात्मासे यह सब किस प्रकारसे हुआ, किस प्रक
होता रहता है और कहाँ जाकर रुकेगा, यह कुछ भी जाना नह
जा सकता; किसीने जाना नहीं। तुम इसके लिये व्यर्थ प्रयत
मत करो। तुम इतना निश्चय समझो कि परमात्मा है, सर्वत्र है
तुममें है। उसकी निष्कामभावपूर्वक कर्मसे, उपासनासे और ज्ञान
से सेवा करो। उसके नामका खूब जप करो। निष्काम भावसे ज
करते रहनेपर समय आवेगा, तब चित्तका मैल धुल जायगा और चित्त
में परमात्माका ज्ञान होगा। उसी प्रकार, जैसे स्वच्छ दर्पणमें आक
स्पष्ट दीख पड़ता है।

भगवान्‌का नाम जपनेवालेको चाहिये कि झूठ, चोरी, दुराचा
आलस्य, अभिमान, व्याकुलता, व्यसन और जुआका त्याग कर
सदाचार और शान्तिपूर्वक अपने प्राप्त कर्मोंको निष्कामभाव
करता रहे और मनको भगवान्‌में जोड़ दे। मन दूसरी ओर कह
भी जाय तो वहाँसे पीछे मोड़कर भगवान्‌के रूपमें या उसके जप
अथवा उसकी कथा सुननेमें लगावे। यों करते-करते जगत् औ
उसके भोग नीरस लगेंगे। मन शान्त होता जायगा। मनको भगवान
में स्वाभाविक प्रीति होती जायगी। ऐसी अवस्थामें भी लगे रहो
तो मन भगवान्‌में लीन हो जायगा और उस समय भगवान
सिवा तुम्हें दूसरी कोई वस्तु नहीं दीख पड़ेगी। मनका मर

मनका परमात्मामें लीन होना—इसीका नाम मुक्ति है। मन जब-तक जीता रहेगा, तबतक जन्म-मरण नहीं छूटेगा। जबतक मनमें इच्छाएँ रहेंगी तबतक मन जीता रहेगा। मन इच्छाओंसे जीता है, इच्छाओंसे ही पुष्ट होता है, इच्छाओंके मरे बिना मुक्ति नहीं, सुख नहीं, शान्ति नहीं।

१०८—यह एक सौ आठ मणियोंकी सत्सङ्गमाला पूरी हो रही है। इसमें जो लिखा गया है, वह शास्त्रानुसार लिखा गया है। संतोंके उपदेशके अनुसार तथा अनुभवसे पक्का करके लिखा गया है। इसे पढ़ो, विचार करो और आचरणमें उतारो तो जरूर लाभ होगा। जागे बिना स्वप्नका दुःख नहीं मिटता। खाये बिना भूख नहीं मिटती उसी प्रकार किये बिना कुछ होता नहीं। तुमको ही करना पड़ेगा। सारा संसार मनके अधीन है। किसी शस्त्रसे, बंदूक या तोपसे, किसी मन्त्र या तन्त्रसे मन नहीं मरता। मन जबतक जीता है, तबतक संसार है। मनका मरना ही मुक्ति है। मनका जीना और मरना उसके अपने अधीन है। मन स्वतन्त्र है, बहुत बलवान् है। वह दूसरे किसीसे मरता नहीं। किसीके शाप या आशीर्वादसे मरता नहीं। देवोंके, सिद्धोंके और संतोंके आशीर्वादसे सम्पत्ति मिलती है, मुक्ति नहीं मिलती। मुक्ति आशीर्वादसे कभी नहीं मिलती। वह तो अपनी ही मेहनतसे मिलती है। दूसरे तो मार्ग बतलाते हैं। मार्गपर स्वयं चलकर लक्ष्यस्थानपर पहुँचना पड़ता है। चले बिना राह नहीं कटती, मन अपने विचारसे ही शान्त होता है। मनमें विचार पैदा होता है निष्काम भक्तिसे। विचार

होनेपर ज्ञान और वैराग्य होता है। जबतक भक्तिसे ज्ञान और वैराग्य न उत्पन्न हो, तबतक जानना चाहिये कि जो भक्ति हो रही है, वह सकाम भक्ति है। सकाम भक्ति या कोई भी सकाम कर्म जगत्की सम्पत्ति और कीर्ति प्रदान करता है। मतलब यह है कि माया प्रदान करता है। निष्काम ही वह विचार पैदा करता है, जो मोक्षका साधन है। मोक्षके लिये किसीकी आशा मत करो। निष्काम भक्ति, निष्काम पुण्य-कर्म, सदाचार, सत्य और मनकी शान्ति—इनका सेवन करते जाओ। इनमें लगे रहो। पहले मार्ग लंबा और कठिन जान पड़ेगा, पर जब तुम उसे आचरणमें लाने लगोगे और उसमें रस मिलेगा, तब वह छोटा और सरल मार्ग जान पड़ेगा। तुममें, मुझमें और सबमें एक ही परमात्मा है। तुम, मैं और सब परमात्म-स्वरूप ही हैं। अन्तमें तो ऐसा लगेगा कि यह सब परमात्मामें ही भासित हो रहा है। सिनेमाके परदेके ऊपर बोलती-चालती सारी सृष्टि दीख पड़ती है। उसी प्रकार यह सारा ब्रह्माण्ड अस्खलित परमात्मामें भासित हो रहा है। यह मिथ्या है, फिर भी निश्चित है। जिस प्रकार एक फिल्म बार-बार दिखलायी जाती है, उसी प्रकार यह बृहद् ब्रह्माण्ड बार-बार वैसे-का-वैसा दिखलायी देता रहता है। सिनेमा-सृष्टि मिथ्या है। वहाँ परदेके सिवा कुछ नहीं रहता। उसी प्रकार यहाँ परमात्माके सिवा जो कुछ भी दिखलायी देता है, वह आत्मदृष्टिसे मिथ्या है। सिनेमावाले फोटो लेकर फिल्म बनाते हैं। भगवान्ने बिना फोटोके ही यह फिल्म बना ली है। यह उनकी विशेषता है। परमात्मा ही सत्यस्वरूप है और तुम्हारा जो असली स्वरूप है, वही परमात्मा

है, यह निश्चय है । मतलब यह कि परमात्माके सिवा जो कुछ भासित होता है, वह परमात्माके द्वारा, परमात्मामें और परमात्माकी शक्तिसे दिखलायी देता है और है मिथ्या । मन जैसे-जैसे यह समझता जायगा वैसे-वैसे उसको शान्ति मिलती जायगी । लकड़ीका बनावटी रूप-रंगवाला नीरस आम है । उसे जान लेनेके बाद कौन उसको खानेकी इच्छा करेगा ? संसारके पदार्थ बनावटी आमके समान हैं । बनावटी आममें जैसे रस नहीं होता, उसी प्रकार संसारके जो प्राणी-पदार्थ हैं, उनमें आनन्द नहीं । अखण्ड आनन्द, अखण्ड सुख तो परमात्मामें ही है और वही [illegible] स्वरूप है ।